# इकाई–1

जिस प्रकार किसी मशीन का आधार अनेक कल पुर्जें होते हैं ठीक उसी प्रकार से मनुष्य का शरीर भी अनेक अवयवों का सम्मलित स्वरूप है। मशीन व मनुष्य में मुख्य अंतर यही है कि मशीन प्राणरहित होती है और उसका संचालन किसी मनुष्य के ऊपर निर्भर करता है। जबकि मनुष्य में प्राण विद्यमान होता है और उसका अंग संचालन उसकी स्वयं की इच्छा पर निर्भर करता है। मशीन का निर्माता मनुष्य होता है तथा वह उसे अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप जो चाहे स्वरूप दे सकता है, परन्तु मनुष्य शरीर का निर्माता परमपिता परमेश्वर है जो केवल मनुष्य को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड के सभी चर अचर जीवों एवं पदार्थों की उत्पत्ति करता है शास्त्रों में यहॉ तक कहा गया है कि वही परमात्मा इस सृष्टि का निर्माता नियंता और उनका विनाशक भी है।

चिकित्सा जगत् में हुए शोधों में इस भौतिक शरीर के अनेक गुप्त रहस्यों का समाधान प्रस्तुत किया है। जीवन की मूलभूत लघुतम इकाईंयों के रूप में कोशिकाओं, ऊतकों, इन्द्रियों एवं अवयवों भिन्न तंत्रों और पूरे मनुष्य शरीर को पूरी तरह ठीक–ठीक समझा गया है। हमारा यह भौतिक शरीर विभिन्न संस्थानों का सम्मलित स्वरूप है इस भौतिक शरीर में विभिन्न संख्या में रक्त वाहिकायें व तंत्रिकायें हैं। शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर हमारे शरीर के पॉच कोश हैं। योग की दृष्टि से देखा जाए तो हमारे शरीर के तीन रूप है।

1) स्थूल शरीर Physical Body
2) सूक्ष्म शरीर Astral Body
3) कारण शरीर Causal Body

और इन तीनों शरीर में पॉच कोशों का स्थान है। ये पॉच कोश निम्न प्रकार हैः–

1 अन्नमय कोश
2 मनोमय कोश
3 आनंदमय कोश
4 प्राणमय कोश
5 विज्ञानमय कोश

चूॅकि चिकित्सा विज्ञान केवल भौतिक शरीर के ऊपर व्याख्या करता है जबकि योग में तीनों शरीर की रचना बतलायी गई। स्थूल शरीर की रचना रस व वीर्य के सम्मलित स्वरूप से होती है और इसके अन्दर पंचमहाभूत तत्व पाये जाते है अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि हमारा भौतिक शरीर पंचमहाभूतो से बना हुआ है। जो निम्न हैंः–

| | | |
|---|---|---|
| 1 | पृथ्वी | Earth |
| 2 | अग्नि | Fire |
| 3 | जल | Water |
| 4 | आकाश | Sky |
| 5 | वायु | Air |

मनव शरीर के मुख्य विभाग :–

1. सिर (Head)
2. ग्रीवा (Nack)
3. धड़ (Trunk)
4. शाखायें (हाथ–पैर) (Limbs)

शाखाओं के दो विभाग हैं:–

a. उर्ध्व शाखाये (Upper Limbs)
b. निम्न शाखायें (Lower Limbs)

### 1 **<u>सिर (Head)</u>** :–

इसे दो भागों में बॉटा जा सकता है – खोपड़ी तथा चेहरा। खोपड़ी सिर के ऊपरी तथा पिछले भाग की हड्‌डीओं का वह कोष्ठ अथवा आवरण है जिसमें मस्तिष्क सुरक्षित रहता है इस भाग को कपाल Cranium कहते है। चेहरा Face के अन्तर्गत ऑख, कान, नाक, ललाट, मुख एवं दोनों जबड़ों की गणना की जाती है।

### 2 **<u>ग्रीवा (Nack)</u>** :–

यह सिर को धड़ से जोड़ती है अतः यह सिर व धड़ के मध्य का भाग है इसके पीछे की ओर रीढ़ की हड्‌डी तथा आगे की ओर टेंटुआ एवं मध्य में ग्रास नलिका रहती है। इस प्रकार शरीर के इस छोटे से विभाग में श्वॉस तथा भोजन प्रणाली के कुछ अंग स्थापित रहते हैं।

### 3 **<u>धड़ (Trunk)</u>** :–

गर्दन के नीचे के हिस्से को धड़ कहा जाता है इसके दो उप विभाग हैं – ऊपरी भाग को वक्ष स्थल तथा निम्न भाग को उदर स्थल कहा जाता है। धड़ के इन दोनों भागों को विभाजित करने वाली एक पेशी है जिसे डायफ्राम कहा जाता है। यह पेशी धड़ के मध्य में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली हुई है। वक्ष स्थल के अन्तर्गत पसलियों, (Ribs) फेंफड़े (Lungs), ......... हृदय (Heart) मुख्य भाग हैं। उदर में आमाशय (Stomach), यकृत (Lever), प्लीहा (Spleen), वृक्क अर्थात् गुर्दे (Kidney), अग्नाशय, छोटी एवं बड़ी आतें तथा श्रोर्ण मेखला की स्थिति रहती है।

### 5 **<u>कोशिका की संरचना</u>** :–

जिस प्रकार एक–एक ईंट से मकान, एक–एक राजकण से पृथ्वी तथा एक–एक बूॅद जल से समुद्र का निर्माण होता है ठीक उसी प्रकार शरीर की एक–एक कोषाणु (Cell) के द्वारा होती है । ये कोशिकायें आकार में बहुत छोटी–छोटी होती है । इन्हें सामान्य आखों से नहीं देख सकते केवल सूक्ष्म दर्शी यंत्र से देखा जा सकता है । कोशिकाओं को शरीर की इकाई भी कहा जा सकता है । कोई मिसाल एवं जटिल वस्तु जब हम ध्यान पूर्वक देखते हैं तब पता चलता है कि वह बहुत सूक्ष्म घटकों से बनी है। जैसे किसी बडी इमारत की संरचना ईंट, पत्थर, रेत, लकडी व लोहे की छडें आदि घटकों से बनी है। वस्त्र धागे से बनता है, पुस्तक कागज के पन्नों एवं स्याही के अक्षरों से बनती है ठीक इसी प्रकार मनुष्य शरीर के सभी अंग सूक्ष्म घटकों से बने है जो कोशिका (Cell) या कोषाणु कहते है। जैसे किसी जड की वस्तु का सूक्ष्म घटक परमाणु होता है वैसे ही प्राणी शरीर का शरीर का सूक्ष्म घटक कोशिका है चाहे वह शरीर प्राणी का हो या वनस्पिति। प्रत्येक कोषाणु एक सजीव तथा स्वतंत्र घटक है प्रत्येक व्यक्ति के समान उसका अपना अस्तित्व तथा जीवन होता है जिसमें उत्पत्ति, विकास एवं विनाश ये तीनों अवस्थायें क्रमशः आती है। कोषाणु को आकार मापने के लिये जो इकाई प्रयोग में लाई जाती है वह अत्यंत सूक्ष्म होती है उसको माईक्रॉन कहते हैं। एक माईक्रान एक मिलीमीटर को एक हजारवां हिस्सा होता है अर्थात् एक मिलीमीटर एक हजार तथा एक इंच में पच्चीस हजार माईक्रान होते हैं। प्रत्येक कोषाणु लगभग पॉच से दस माईक्रान लम्बा एवं चौडा होता है अर्थात् एक मिलीमीटर अंतर में लगभग 150 या 200 कोषाणु समाते है। मनुष्य का शरीर ऐसे असंख्य कोषाणुओं का समूह है।

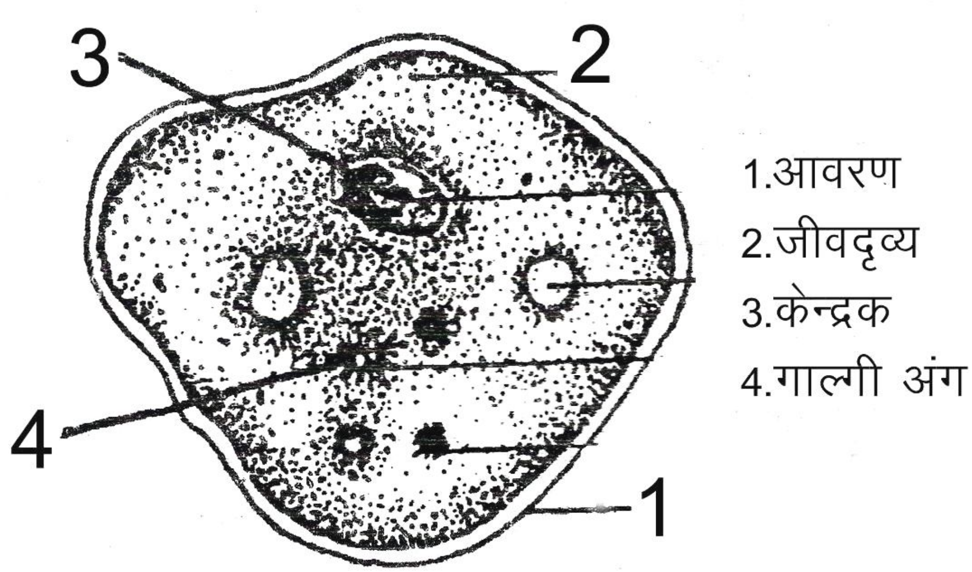


कोषाणु के अंग

अनेक व्यक्ति मिलकर समाज, प्रदेश व राष्ट्र का निर्माण करते है ठीक उसी प्रकार कोषाणुओं से मिलकर विभिन्न अंग–प्रत्यंग बने हुए है। प्रत्येक कोशिका के निम्नलिखित चार विभाग होते है :–

1. कोशिका भित्ती (Cell Wall)
2. जीवदृव्य (Protoplasm)
3. केन्द्रक (Nucleus)
4. आकर्षक गोलक (Attraction Sphere)

1. **कोशिका भित्ती** :– प्रत्येक कोशिकाओं के चारों ओर झिल्ली की दीवार होती है जो बहुत स्पष्ट नहीं होती यह जीव दृव्य से ही निर्मित तथा पारगम्य होती है। इसमें छोटे–छोटे अनेक छिद्र होते है जिनके द्वारा आवश्यक वस्तु के ग्रहण तथा अनावश्यक वस्तु के परित्याग की क्रिया संपन्न होती है । कोशिका के भीतर श्वास प्रश्वास की प्रक्रिया भी इसी कोशिका भित्ती से होती है। आवरण के कारण कोशिका का स्वतंत्र अस्तित्व होता है यदि यह कोशिका भित्ती नष्ट हो जाये कोषाणु अलग नही रह सकेगा। और उसका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। कोशिका भित्ती कोशिका के अंदर के अंगों की रक्षा करती है। वह अत्यंत पतला होने के कारण वायु तरल पदार्थ, सूक्ष्म कण उसको पार करके एक ओर से दूसरी ओर तथा एक कोषाणु से दूसरे कोषाणु में जा सकते है। इसे कोषाणु का विकास एवं पोषण कहते है।
2. **जीव दृव्य** :– यह एक गाढा चिकना पदार्थ है जो जीवन का आधार कहा जा सकता है यह कोशिका दृव्य, कोशिका भित्ती तथा केन्द्रक के मध्य तरल पदार्थ के रूप में होता है। प्रत्येक कोशिका का पोषण जीव दृव्य से ही होता है। जीवन का वास्तविक आधार जीव दृव्य ही है। चाहे वह सूक्ष्म जीव हो, वनस्पिति, पशु या मनुष्य। जीव दृव्य में 75% से 80% तक जल का भाग होता है तथा 20% से 25% तक ठोस पदार्थ पाये जाते है। इन ठोस पदार्थों में चर्बी, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेड आदि पाया जाता है। इसका विशेष गुन उत्तेजनशीलता है इसमें सम्वेदनशीलता अधिक होती है जीवरस में अनेक अंग होते है जैसे–माइट्रोकॉण्ड्रिया, राइबोसोम्स, गाल्गी अंग, गेन्यूल्स आदि सूक्ष्म अंग होते है। ये गोल आकृति या दंडाकृति में होते है। एक कोषाणु के भीतर इनकी संख्या काफी बडी होती है।इनका कार्य ऊर्जा प्राप्त करने में सहयोग देना है। इसलिए इनको कोशाणु को पॉवर हाऊस या ऊर्जा क्रेन्द्र कहा जाता है। राइबोसोम्स माइट्रोकॉन्ड्रिया से छोटे होते हैं। उनमें (RNA) नामक दृव्य होता है। गाल्जी अंगों में पोशक तत्व के भंडारण या संचय का कार्य होता है। ग्रेन्यूल्स में भााकतत्व, मांसतत्व आदि के कण तथा रंगीन पदार्थों के कण होते है। इनमें से मैलालिन नामक ग्रेन्यूल्स होने से त्वचा का रंग काला या गेंहुआ हो जाता है। गोरे व्यक्ति में मैलालिन ग्रेन्युल्स नहीं होते।

3. **केन्द्रक** :– यह कोशाणु का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है प्रत्येक कोशिका के लगभग मध्यभाग में एक घना आधार होता है। जिसे नाभिक कहते हैं। यह विकास विभाजन तथा जीवन के सभी कार्यों का नियंत्रण करता है यह भी जीव दृव्य से भी बना होता है। कोि ाका को जीवित रखना कोशिका में गति कोि ाका के विभाजन द्वारा उस जैसी अन्य कोि ाकाओं की उत्पत्ति तथा वृद्धि में सभी कार्य नाभिक द्वारा उत्पन्न होते है। इसका एक पतला आवरण होता है जो जीव दृव्य से अलग रखता है। ज्यादातर कोशाणु में एक ही केन्द्रक होता है परंतु कुछ कोशाणु ऐसे भी जिनमें एक से भी अधिक Cell होते है। जैसे रक्त के भवेत कण तथा कुछ कोशाणु केन्द्रक विहीन होते हैं। जैसे रक्त गोल का केन्द्रक के भीतर एक सूत्रों का जात होता है केन्द्रक में जटिल रासायनिक संरचनायें होती है जिन्हें क्रोमोसोम्स कहते है। इन्हीं क्रोमोसोम्स के अंदर जीन संरचनायें पाई जातीं हैं इनमें जातिगत गुण विद्यमान होते है। क्रोमोसोम्स हमेशा जोडी में रहते हैं। मनुश्य में प्रत्येक कोशाणु के केन्द्रक में क्रोमोसोम्स के 23 जोडे अर्थात् कुल 46 क्रोमोसोम्स रहते हैं। मनुश्य का तथा किसी भी प्राणी का भारीर मूलतः दो कोशाणु के समिश्रण से बनता है इनमें से एक कोशाणु माता से बीज डिम्ब तथा दूसरा कोशाणु पिता के भारीर से स्पर्म भुक्राणु कहते हैं। इन दो में से प्रत्येक में 23 क्रोमोसोम्स रहते हैं। कुल क्रोमोसोम्स की संख्या व्यक्ति में 23 जोडे ही रहते है। इस प्रकार कोशाणु भारीर का संरचनात्मक व क्रियात्मक घटक रहता है। कोशाणु के जीवन में एक महत्वपूर्ण बात है विभाजन जब कोशाणु का विकास पूरा होता है तब उसका केन्द्रक प्रथम विभाजित होकर प्रत्येक क्रोमोसोम्स लम्बाई में विभाजित हो जाता है और ये क्रोमोसोम्स कोशाणु के दौनों ओर चले जाते है तदुउपरांत कोशाणु के मध्य में आवरण का पर्दा बन जाने पर दो कोशाणु अस्तित्व में आते हैं।

**तन्तु** :–

कोशाणु एक सूक्ष्म वस्तु है वह अकेले में कोई बडा कार्य नहीं कर सकती परंतु हरेक कोशाणु समूह बनाकर किसी कार्य को कर सकते हैं इन सभी कोशाणु में आकृति एवं कार्य में एकरूपता होती है अर्थात् समान कार्य एवं समान उद्दे य के लिए कार्य करने वाली कोि ाकाओं के समूह को ऊतक कहा जाता है। जिस प्रकार कोशिकाओं का एक समूह मिलकर ऊतक की संरचना करता है ठीक उसी प्रकार ऊतकों का समूह मिलकर भारीर के एक अंग अर्थात् अवयव् की संरचना करता है। इस प्रकार ऊतकों को निम्नप्रकार से वग्रीकृत किया जा सकता हैः–

1. तंत्रिका तंत्र (Narvaus Tissue)
2. मासपेशियां ऊतक
3. अस्थि ऊतक
4. उपकला ऊतक Epithelial Tissues
5. फुफफुस ऊतक Alvealor Tissues

6. संयोजक ऊतक Conective Tissues
7. ग्रंथि ऊतक Glandular Tissues
8. रूधिर ऊतक Blood Tissues

तंत्रिकातंत्र ऊतक इन ऊतकों द्वारा सम्पूर्ण तंत्रिकातंत्र ऊतकों को निर्माण होता है इनमें मस्तिश्क, तंत्रिका, सुशुम्ना तंत्रिका इन ऊतकों को न्यूरॉन कहा जाता है। न्यूरॉन दो प्रकार के होते हैं

1. Bipolar Nerve Tissue
2. Multipolar Nerve Tissue

इन ऊतकों के निम्न तीन कार्य हैं

- संवेदना की सूचनाओं को ग्रहण करना।
- प्रेरक आज्ञाओं की सूचना को भेजना।
- संवेदनाओं को आज्ञा में बदलना।

प्रत्येक तंत्रिका कोशिका अर्थात् न्यूरॉन के निम्न तीन भाग हैं–

1. Axon तथा Axis Cylinder यह नर्वससेल केन्द्र से आरंभ होकर बाहर की तरफ निकलता है तथा प्रेरककला की सूचनाओं को ले जाने का कार्य करता है। इन्हें Efferent अथवा मोटरनर्स फाइवर भी कहा जाता है।
2. संवेदनाओं की सूचनाओं को लाने वाले फाइवर, ये बाहर से आकर केन्द्रक की ओर समाप्त हो जाते है।
3. नाभिक दूसरा कार्य सूचनाओं को पाकर तदानुसार कला प्रदान करना होता है। तंत्रिकातंत्र का एक भाग केन्द्रिय तथा परि ारीय होता है, इसका अधिकांश भाग स्वतंत्र होता है। इसे अनुकंपी (Sympathetic) तथा Parasymycthetic इन दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

**मांसपेशीय ऊतकः–**

मनो शरीर का अधिकांश भाग मॉसपेशीयों का बना होता है। यह सम्पूर्ण शरीर में फैली होतीं हैं। शरीर के भीतर तथा बाहर जितनी भी गतियॉ होती हैं वह सब इन पेशियों द्वारा होती है। यह पेशियॉ एक ओर वाह्य भागों से लगी रहती है, दूसरी ओर पाचन नली, श्वॉस नली उर्त्सजन के विभिन्न अंग आदि में फैली होती है। यह लाल रंग की तथा पादर्शक होती हैं।

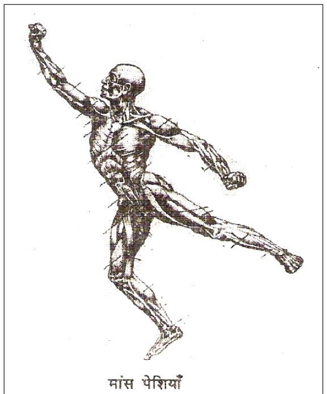

मांस पेशियाँ

कार्य के अनुसार इन्हें दो भागों में बॉटा जा सकता है।

1. ऐच्छिक पेशी
2. अनैच्छिक मॉसपेशी

**ऐच्छिक मॉसपेशी** :—इन्हें रेखांकित मॉसपेशी भी कहा जाता है, इसकी गति या इनमें गति मनुष्य की इच्छा के अधीन होती है। अर्थात् इनका संकुचन एवं प्रसारण मनुष्य की इच्छा पर निर्भर करता है, यह लचीली होती है तथा इनसे एक प्रकार का स्त्राव निकलता है। जिसे Sarcolaclic Asid कहते हैं। यह हड्डियों को हिलाने डुलाने का काम करती है तथा एक हड्डी से आरंभ होकर उसी हड्डी पर जोड़ बनाने वाली इनके निकलने पर मॉसपेशियॉ शिथिल हो जातीं हैं तथा मनुष्य को थकान का अनुभव होता है। यह विद्युतधारा के झटके से प्रभावित होती है, तथा सर्दी लगने पर कड़ी हो जाती है। उस स्थिति में शरीर में पीड़ा होती हैं।
**अनैच्छिक मॉसपेशी** :—इनका संचालन एक प्रकार के स्वत्रंत तंत्र के द्वारा होता है। इन मनुष्य की इच्छा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता हैं स्वतंत्र तंत्रिका तंत्र निर्देश अनुसार ही मॉसपेशियॉ फैलती तथा सुकुड़ती तथा निश्चित क्रम में अपना कार्य करतीं हैं। इनकों भी दो भागों में बॉटा जाता है —

A. जैसे हृदय आदि की मॉसपेशियॉ।
B. जैसे स्वॉस नली तथा धमनियों की मॉसपेशियझूं

उक्त दो प्रकार की हृदय की पेशी अनैच्छिक होते हुए भी ऐच्छिक होती हैं, इनमें और भी विशेषतायें पायी जाती है। सभी अनैच्छिक मॉसपेशियॉ अपना कार्य करतीं रहती हैं। यह वस्तुओं को एक ही दिशा में आगे हटाने में सहायक होते हैं इन्हीं के कारण शरीर के कोशों तथा रोमों की वृद्धि होती रहती है।

## अस्थि ऊतक Bone Tissue

अस्थियों को दो प्रकार से बांटा जा सकता है —

3. ठोस और कडी Compect Bone
4. पतली और मुलायम Cartilage Bone

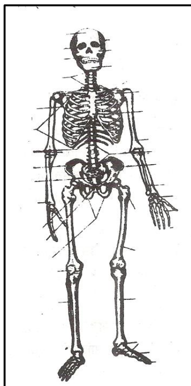

अस्थि कंकाल

ठोस और कडीः— यह हड्डियां भी दो प्रकार की होती हैं A पतली, लम्बी तथा पोली हड्डियां इन हड्डियों की भीतरी नली को मडला नाम (Marrow Cavity) कहा जाता है।

B ठोस तथा चपटी हड्डियां जैसे सिर की तथा ढोणी की हड्डियां इन दौनों प्रकार की हड्डियों के ऊतकों के क्रम ाः कठोर अस्थि ऊतक Hard bone tissue तथा कोमल अस्थि को कोमल अस्थि ऊतक Soft Bone Tissue कहा जाता है।

## उपकला ऊतक Epithelied Tissue

कुछ ऊतक ऐसे होते है जो भारीर की प्रत्येक भीतरी भाग में रहते है। तथा भारीर के बाहरी भाग को भी ढंके रहते हैं यह ऊतक स्थर भांति फैले रहते हैं। इन्हें उपकला ऊतक कहते हैं। प्रत्येक स्थान के कार्य के अनुसार इनकी रचना विभिन्न प्रकार की होती है इस तरह के ऊतकों को पॉच भागों में बांटा गया है—

1. स्तरीय उपकला ऊतक (Strategic Epithilied)
2. स्तंभाकार उपकला ऊतक (Columal Tissues)
3. एक स्तरीय शल्की उपकला ऊतक (Pavement Tissues)
4. रोमक उपकला ऊतक (Epithelium Tissues)
5. परिवर्ती उपकला ऊतक (Transitional Epithelium Tissue)

1. स्तरीय उपकला ऊतकः— यह ऊतक अधिकतर शरीर के बाहरी भागों में फैले रहते हैं तथा रगड़ खाने के लिए कड़ी सतहों का निर्माण करते हैं, जैसे — हथेली तथा पॉव के तलवें।
2. स्तंभाकार उपकला ऊतकः— इन ऊतकों से रक्त में एक प्रकार का रस उत्पन्न होता है जिसे स्त्राव कहा जाता है यह अन्य ऊतकों की अपेक्षा अधिक क्रियाशील होते हैं, तथा पाचन नलिका एवं वृक्क नलिका में लगे पाये जाते है।
3. एक स्तरीय शल्की उपकला ऊतकः— यह प्रायः शरीर के ढके हुऐ भागों जैसे एक नलिका लसिका नाभिका फुफ्फुस के वायु कोश श्लेषमिक झिल्ली तथा संधि स्थलो के झिल्ली आदि में पाये जाते हैं। इनमें वायु का प्रवेश सरलता से होता रहता है, इन ऊतकों की कोशिकाओं की केवल एक ही चपटी तथा पतली होती है।
4. रोमक उपकला ऊतकः— इन ऊतकों के कोष पंक्तिबद्ध रूप में पाये जाते है इन ऊतकों के अपनी भाग पर रोम लगे होते हैं।
5. परिवर्ती उपकला ऊतकः— इन्हें कई प्रकार के ऊतकों का मिश्रण या सममिश्रण कहा जाता है। यह दो—तीन स्थिरों वाले होते हैं, जो सतह पर चपटै हो जाते है यह ऊतक विशेष रूप से मूत्रनलिका में पाये जाते हैं जो अपने रासायनिकों द्वारा निम्नांगों को सुरक्षित बनाये रखता है।

## फुफ्फुस ऊतक Abieolor

इन ऊतकों के रंग हल्के गुलाबी रंग के होते हैं। इनकी दीवारे बहुत पतली होती हैं, यह लचीले भी होते हैं यह फेफड़ों का निर्माण करते हैं, इनमें वायु का प्रवेश सरलता से होता है। वायु से भर जाने पर यह दब जाते हैं, तथा सिकुड़ जाते हैं, इन ऊतकों के कोष महीन वायु नमीं में घूमते हैं अंगूर के गुच्छे की भांति गुथे रहते हैं, परन्तु इनकी दीवारे एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं और इनके चारों ओर सिरायें फैली रहती हैं।

## ग्रंथी ऊतक Clondulor

इन ऊतकों द्वारा विभिन्न प्रकार की ग्रंथियों का निर्माण होता है। इनमें एक प्रकार का स्त्राव निकलता है। जो शरीर के लिए अत्यंत उपयोगी होता है, विभिन्न प्रकार के ऊतकों से विभिन्न प्रकार के स्त्राव निकलते हैं शरीर के भीतर तीन प्रकार की गंथियॉ होतीं हैं।

A. जिनके द्वारा स्त्राव निकलकर नलिकाओं द्वारा ऑतों में पहुॅचता है, तथा पॉचन क्रिया में सहयोगी बनता है जैसे यृक्क पैक्रियाज तथा सैलीविटीज गॅलेस।
B. बिना नलिकाओं वाली गंथियॉ जिनका स्त्राव निकलकर सीधा रक्त में मिल जाता है, इनके स्त्राव को हार्मोन कहा जाता है, तथा इनकों अंतःस्त्रावी ग्रंथियॉ कहते हैं।
C. वह ग्रंथियॉ जिनसे निकलने वाला स्त्राव चिकनाहट का कार्य करता है ताकि शरीर में रगड उत्पन्न होने पर त्वचा छिलने न पाये। यह ग्रंथियॉ मुॅह तथा आंतों की भीतरी झिल्ली में पायी जातीं हैं। इन्हें Muscus Gland कहते हैं।

## रूधिर ऊतक

यह ऊतक संयोजक ऊतक की ही किस्म या भांति है जो अन्य प्रकार के ऊतकों से भिन्न होता है। इनमें दो प्रकार के कोषक पाये जाते हैं जिन्हें रक्त कोशिकायें कहा जाता है–

i. लालरक्त कण
ii. श्वेतरक्त कण

उक्त ऊतकों का माध्यम इनमें आधारीय द्रव्य पदार्थ होता है जोकि आकर्षण तथा प्रवाहन का मुख्य साधन है। रक्त में पाये जाने वाले इस पदार्थ को प्लाजमा कहते हैं प्लाजमा एक रंगहीन द्रव्य है जो संयोजक ऊतक के Material की भॉति होता है तथा रक्त कोशिकायें इसी में तैरते हुए एक –स्थान से दूसरे स्थान तक पहुॅचतीं है।

i. **लालरक्त कणः**— रक्त में कणों की मात्रा सबसे अधिक अर्थात् 40% पायी जाती है, एक क्यूविक मिमी. एक में इनकी संख्या 45 से 50 लाख तक होती है यह आकार में गोल, मध्य में मोटे दोनो ओर उभरे हुये किनारे की ओर पतले सिक्के की घुमान की भॉति घूमते रहने वाले होते हैं। इनमें केन्द्रक नहीं पाये जाते हैं। हीमोग्लोबिन अर्थात लजोहा एवं ग्लोबिन नामक एक किस्म की प्रोट्रीन के कारण ही इनका रंग लाल प्रतीत होता है यह सम्पूर्ण शरीर को शक्ति एवं गति स्वास्थ्य प्रदान करते हैं।

ii. **श्वेतरक्त कणः**— लाल कणों की अपेक्षा इनकी संख्या काफी कम रहती है एक क्यूविक मिमी. रक्त में 6 से 9 हजार की संख्या में पाये जाते हैं। सामान्यतः प्रति 300 लाल कणों के अनुपात में 1 श्वेत रक्तकण पाया जाता है। यह आकार में लाल रक्त कणों से बड़ होते हैं इनमें केन्द्रक होते हैं, इन कोषाओं का कोई निश्चित आकार नहीं होता है, इन इनका मुख्य कार्य रक्त के भीतर पाइ जाने वाली .......तथा कार्य की वस्तुओ को हटाना तथा विषाणुओ व जीवाणुओं के आक्रमण से शरीर की रक्षा करना तथा उन्हे युद्ध में पराजित करना है। जब शरीर में श्वेत रक्त कणों की संख्या कम हो जाये तो विषैले जीवाणुओं के आक्रमण द्वारा उन्हें अस्वस्थ्य बना देते हैं, इन कणों की अधिकता भी शारीरिक स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध होती है।

## संयोजक ऊतक

यह ऊतक अत्यंत साधारण  के होते हैं इनका निर्माण संदेह तथा पीली जाली के समान होता है सम्पूर्ण शरीर में फैले रहते हैं इनका कार्य विभिन्न ऊतकों को आपस में जोड़ना तथा खाली स्थानों को भरना है, यह शरीर को गर्मी देते हैं शर्दी से शरीर को सुरक्षा प्रदान करते हैं या उपवास के दिनों में निराहार की अवस्थामें शरीर को भोजन उपलब्ध करते हैं।

## मॉसपेशीय संस्थान

शरीर की सभी मॉसपेशियॉ मॉसपेशीय संस्थान का अंग हैं। मूल रूप से शरीर में चार घातुयें पायीं जातीं हैं।

1. आस्तरण धातु
2. योजक धातु
3. मॉस धातु
4. नाड़ी धातु

कोष मात्र का गुण हैं परन्तु मॉस धातु में यह कार्य विशेष रूप से होता है मॉस धातु मॉसपेशी में विभक्त होती है। मॉस शब्द की उत्पत्ति ़माण्माने धातु से हुई है, जिसका अभिप्राय मापन योग्य होना यह धन धातु मापन के योग्य है अतः इसे मॉस कहा जाता है।

आयुर्वेद के मत से — रक्त से मॉस उत्पन्न होता है।

चरक का मत है कि, वायु जल तेज व ऊष्मा से युक्त होने पर रक्त स्थरता को प्राप्त होकर मॉस बन जाता है। (च. 15 : 20).
डलहल का मत है कि, मॉस धातु का सघाट विभक्त होकर पेशी कहलाता है पेशी के दो सिरे होते है यह दोनों सिरे स्नायु कण्डरामो द्वारा दृढ़ता से अस्थि से बंधे होते है मॉसपेशी का पहला सिरा जिस भाग से बना होता है उसे प्रभव कहते हैं, तथा दूसरा सिरा जो दूसरी अस्थि पर जाकर लगता है उसे निवेश कहते हैं। इस प्रकार मॉसपेशी अस्थि के एक भाग से निकलती है तथा दूसरी अस्थि पर जाकर लग जाती है। क्रियाशीलता के समय मॉसपेशी का प्रभव स्थान स्थिर रहता है जिसके कारण मॉसपेशी के संकोच से निवेश भाग गतिशील होता है मॉसपेशी ही शरीर की गति का कारण है।

आयुर्वेद के मत से :– मॉस धातु का कार्य शरीर की पुष्टि करना तथा मेध का पोषण करना है।

शरीर के अंकुचन तथा प्रसारण का कारण कण्डाइम है

इस प्रकार मॉस का कार्य चेष्ठा है।

मॉसपेशियॉ मॉसधरा, कला से ढकीं रहती हैं। शरीर मॉस धातु के क्षय से इसफिक ग्रीवा व उदर प्रवेश व शुष्क सूख जाते हैं। शरीर में मॉस का क्षय होने पर मॉस का सेवन करना चाहिए इसके अतिरिक्त प्रोट्रीन युक्त अहार जैसे– अण्डा, दूध, पनीर, दालों का अधिक सेवन करना चाहिए। मॉस धातु की अति वृद्धि होने पर या अधिकता होने पर इसफिक गुण, अरू, अष्ट आदि की स्थूलता तथा शरीर में भारीपन होते हैं। ............मॉस की अधिक उत्पतित होने पर मॉस तथा प्रोट्रीन युक्त आहार बंद कर देना चाहिए। मॉस पेशी में संकोच की स्थिति होती हैं जिसके कारण नाड़ियों के द्वारा इनमें आने वाली संवेदना है। अधिकांश मॉसपेशियॉ अस्थियों से जुड़ी होती हैं जो लीवर के समान कार्य करतीं हैं, मॉसपेशियों के सूत्र विभिन्न अंगों में जैसे – हृदय, रक्तवाहनियों, आमाशय, ऑतों, मूत्राशय एवं गर्भाशय मॉसपेशियों में संकोचशीलता संक्षेपिता प्रभाव तत्व तथा स्थिति स्थापकता यह मॉसपेशियों के चार गुण होते हैं।

मॉस धातु का संगठन

मॉस धातु का प्रमाण शरीर में सबसे अधिक है, शरीर में वजन का 41% मॉस होता है जिसमें 5% जल तथा 21% प्रोट्रीन होता है। सम्पूर्ण जल का प्रोट्रीन आधा भाग मॉस होता है।

मॉसपेशियों में निम्न प्रोट्रीन पाये जाते हैं।

1. **मायोसिनः**– यह एक ......ग्लोब्यूलिन है जो एक एन्जाइम के रूप में कार्य करता है तथा जल प्रोट्रीन का 40% होता हैं।

2. **मायोजिनः**— यह भी एक ग्रामब्यूलिन है जो कि कम प्रोट्रीन का 20% होता है।
3. **ग्लोब्यूलिनः**— जो अलग घुलनशील होती है।
4. **स्ट्रोमा प्रोट्रीनः**— जो अघुलनशील है। मॉस धातु का लाल रंग उसमें मायोग्लोबिन के कारण होताह है जो लोहा युक्त प्रोट्रीन है इसके अतिरिक्त इसमें साईटोग्रोन एक सीडेजिज भी पाये जाते हैं मायोसिन निष्क्रीय होती है परन्तु एक्सन के साथ मिलकर Actionmyosin सूत्र बना देती है।

जो A रोडनिल ट्राय फोर के साथ संयुक्त तथा संकुचित होकर स्थिल होता है मृत्यु के समय मॉसपेशियॉ जम जातीं हैं इस दशा में पैरामाईसिर्नाजन तथा मायोसिर्नाजन में परिवर्तित होतें हैं। इस कारण शरीर अकड़ जाता है इस दशा को मृत्योत्तर रोथेन कहा जाता है।

मॉसपेशियॉ दो प्रकार की होती हैं।

1. पीथ पेशी
2. रक्त पेशी

1. **पीथ पेशीः**— पीथ पेशी में वसा की मात्रा अधिक होती है, तथा रक्त पेशियों में हीमोग्लोबिन की मात्रा अधिक पाई जाती है, रक्त पेशियों के सूत्र पतले होते है सारकोप्लाज अधिक होता है। तथा यह अधिक धरे सुकड़ते है।

   मनुष्यों में लाल सूत्र सोलियस मॉसपेशी में अधिक होते है तथा पीथ सूत्र ग्रिसरोकामीनियस नामक मॉसपेशी में होते है अधिकांश मासपेशियो में मिले जुले रहते हैं

   प्रत्येक मासूत्र के ऊपर एक रचना होती है, यहॉ पर इस मॉसपेशी की नाड़ी का अंतिम शिरा स्थित होता है, (End Plate) नाड़ी को उत्तेजिक करने पर यहॉ पर Electracal अनुभव किया जाता है, इससे केन्द्रक संरचना Nesty परन्तु मॉसपेशी में धारियॉ नहीं होतीं यदि नाड़ी काट दी जाये तो यह Nesty (नेस्टी) नष्ट हो जाती है परन्तु End Plate पर काई प्रभाव नहीं पड़ता इसका अभिप्राय यह है कि इसका संबंध Nerve (नर्व) नाड़ी की अपेक्षा मॉसपेशी से अधिक होता है एक नाड़ी 5 से 160 मॉससूत्रों को नाड़ी सूत्र देती है।

मॉसपेशियों के प्रकार

**1. धारीदार या ऐच्छिक मॉसपेशियॉः**— इन मॉसपेशियों को कंकाल पेशी भी कहा जाता है क्योंकि कंकाल पर स्थित होती हैं इनके माससूत्रो के संकोचशील पदार्थ में गहरी तथा हल्की धारियॉ पायी जातीं हैं, जिसके कारण इसे धारीदार पेशी कहा जाता है, यह मॉसपेशियॉ हमारी इच्छा के अधीन होती हैं।

मॉससूत्र लगभग 2½ सेमी. लम्बे होते हैं इनका आकार सिलेण्डर के समान होता है। तथा इनके शरीर गोल होते हैं इनमें से कुछ कण्डरा समूह के रूप में लम्बे होते हैं तथा अस्थि से जुड़े होते हैं। जिसे सारकोलाईमा कहा जाता है, इसके भीतर मृदु पदार्थ भरा होता है जिसे संकोचशील पदार्थ कहते हैं, इसे संकोचशील पदार्थ के भीतर हल्की और गहरी धारियॉ होती है,

मॉसपेशियों में अण्डाकार नेस्टी होती है। यह ठीक सारकोलाईमा के नीचे होती है यह पेशी अपना कार्य दिन रात निरन्तर करती रहती है। मॉसपेशियां जितनी सुदृण होती हैं मनुष्य का शरीर उतना ही सुन्दर व सुगठित होता है।

यह मॉससूत्र फाइवर या साइकोटाइम का बना होता है यह साईकोप्लाजमा नामक पदार्थ द्वारा आपस में संबंधित होते हैं। प्रत्येक साईकोस्टाईल क्रिसासो झिल्ली द्वारा कई भागों में बटे होते हैं इन्हें साईकोनिया कहा जाता है। प्रत्येक साईकोनिया में एक गहरी धारी होती है, जिन्हें साईकर ऐलीमेन्ट कहते हैं। इसके दो पृथक भाग होते है इसके भीतरी भाग Line of Hansen (लाईन ऑफ हेन्सन) पर आपस में मिले होते हैं। यह अंदर से खोखले होते हैं। इनके मोड़ क्रासे मेरयिन के ओर होते है। साईकर ऐलीमेन्ट व ..... के मध्य खाली स्थान होता है जिसमें एक स्वच्छ द्रव्य पदार्थ होता है। जब मॉससूत्र सिकुड़ता है तो यह पदार्थ सारकस ऐलीमेन्ट नालियों के छिद्रों के द्वारा सारकस ऐलीमेनट में भर जाता है जिसके कारण यह ऐलीमेन्ट फूलकर मोटे हो जाते हैं।यही कारण है कि सिकुड़ने पर मॉसपेशी मोटी हो जाती है जब मॉससूत्र फैलते है, यह द्रव्य पदार्थ पुनः खाली स्थान में आ जाता है सारकोसिस में स्थित सारकस ऐलीमेन्ट कोष के जीवदृव्य के इसकपोनजियो का प्रतिनिधि है तथा खाली स्थान का द्रव्य पदार्थ हायलो का प्रतिनिधि है।

2. **धारित या अनैच्छिक मॉसपेशियॉ**:— यह मॉसपेशिया शरीर के अनेक अंगों की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक हैं, यह अनेक अंगो की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक हैं यह छोटे मॉससूत्रों की बनी होती हैं यह मॉससूत्र लम्बे और सूक्ष्म आकार ......... इनकी लम्बाई 1600 इंच से अधिक नहीं होती है, प्रत्येक सूत्र में अण्डाकृति नेस्टी होती है, इसके चारो ओर पतला आवरण होता है यह सूत्र योजक पदार्थ द्वारा आपस में संयुक्त होते है इस योजक पदार्थ में पतले तंत्र होते हैं जो एक सूत्र से दूसरे सूत्र को जाते हैं धाराविहीन मॉसपेशियों को (Plane या Smouth ) कहा जा सकता है।

यह मॉसपेशियॉ इच्छाधीन नहीं होती और स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं। यह स्वतंत्र नाड़ी संस्थान के अधीन होतीं हैं इनमें संकोच और विस्तार लयबद्ध होता है इस प्रकार इन पेशियों में कार्य और विश्राम होता है। इस प्रकार इन पेशियों में कार्य और विश्राम साथ–साथ स्वतः होते रहते हैं। इस कारण यह लम्बे समय से कार्य श्रम बनी रहती है। यह धारीदार पेशी की अपेक्षा विद्युत उत्तेजनाओं से शीघ्र नहीं होती, यह इनके उत्तेजित होने में 1 से 3 सेकेण्ड लगते हैं जबकि धारीदार पेशियों की उत्तेजना में 0.05 सेकेण्ड का समय लगता है परन्तु यह रासायनिक उत्तेजनाओं द्वारा शीघ्र उत्तेजित हो जाती है। धारी विहीन पेशियों में टायटेनिस के समान जल्दी सुकुड़ने का स्वाभाव पाया जाता है जिसके कारण भारी वेदना का अनुभव होता है जैसे आमाशय और आूंतों की तीब्र वेदना। मॉसपेशी के सूत्रों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता जैसा कि हम धारीदार पेशियों की अवस्था में कर सकते हैं। इसमें संवेदना प्रायः शीघ्र ही सारी मॉसपेशियों में पहुॅच जाती

है परन्तु यह कभी कभी उसके एक हिस्से तक सीमित रह सकतीं हैं। तनाव तथा दबाब का इन मॉसपेशियों पर उत्तेजनक प्रभाव पड़ता हैं इन पर इसमें ऊष्मा का शीघ्र प्रभाव पड़ता ऊष्मा से यह शीघ्र शिथिल पड़ जातीं है।

# <u>इकाई–2</u>

निशुद्ध ग्रंथियों के प्रकार एवं उनके कार्यः– अन्तः स्त्रावीग्रंथियॉ एवं नलिका विहीन ग्रंथियॉः–हमारे शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियॉ पायी जाती हैः–

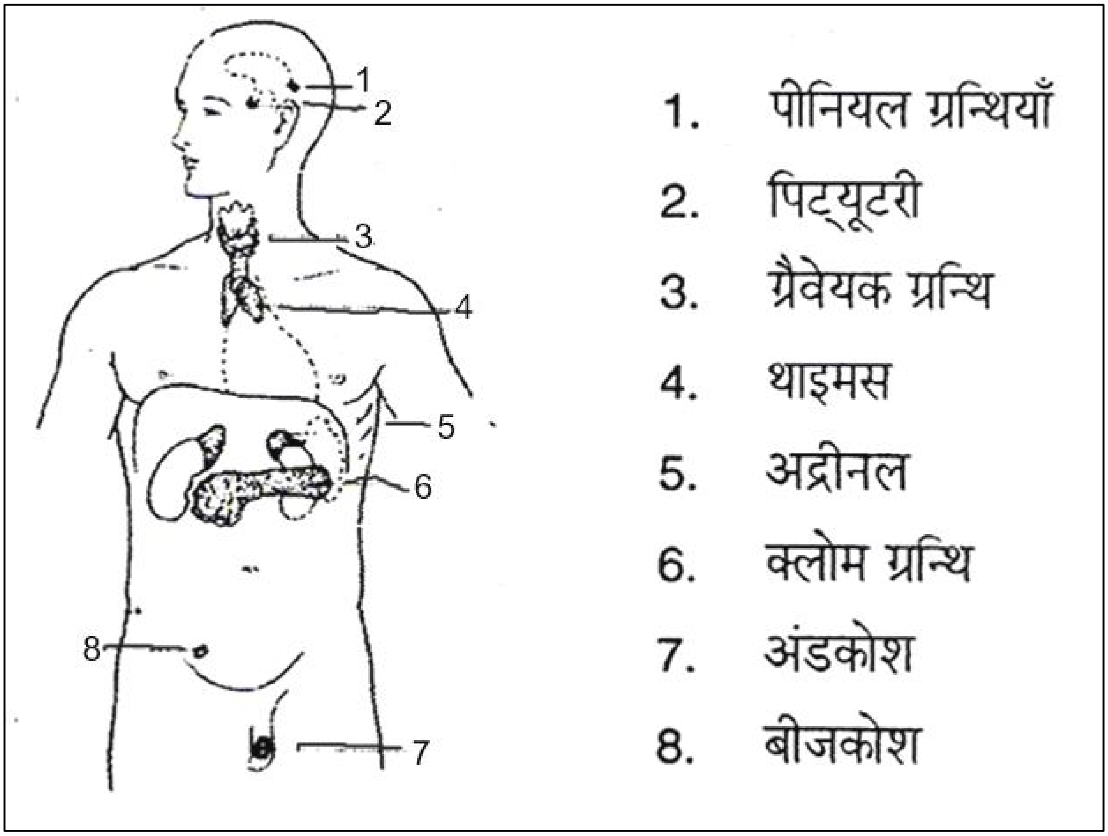


1. वाहिनी वाली ग्रंथियॉ
2. नलिका विहीन ग्रंथियॉ

1. **वाहिनी वाली ग्रंथियॉ** :– हमारे शरीर के अन्दर ऐसी ग्रंथियॉ होती हैं जिनका रस निकाल कर नलिका द्वारा रक्त में भेजा जाता है, अथवा वह अंग में पहुॅचकर अपना कार्य करता है। जैसे लार ग्रंथी, आमाशय ग्रंथी अथवा यकृत आदि ऐसी ग्रंथियॉ हैं जिनका स्त्राव सीधे अंग के अन्दर ही निकलता है मुंह से लार आमाशय से जठर रस इसका स्त्राव किसी नलिका या प्रणाली द्वारा किसी विशेष क्षेत्र में पहुॅचता है (जहॉ से उसे जठर रस मिलता है ) वाहिनी वाली ग्रंथी वाह्य स्त्रावी ग्रंथी होती है।

2. **नलिका विहीन ग्रंथीः**– शरीर के अन्दर कुछ ऐंसी ग्रंथियॉ है जिनका स्त्राव न होते हुए किसी अंग विशेष में गिरता है, और न उनमें से कोई नलिका की

उत्पत्ति होती है। ऐसी ग्रंथियॉ नलिका विहीन ग्रंथियॉ कहलाती हैं। वह अपने रासायनिक द्रव्यों को अपने में से निकालने वाली रक्त कोशिकाओं के रक्त में सीधे स्त्रावित कर देती है। इनसे निकलने वाले स्त्राव एकीकृत तंत्र का निर्माण ही नहीं करते वल्कि कई देहिक क्रियाओं पर अपना ध्यान महत्वपूर्ण संयोजन कार्य प्रभाव डालते हैं। नलिका विहीन ग्रंथियों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है।

1) **पीनियल ग्रंथी**
2) **पिट्यूटरी ग्रंथी**
3) **थायराईड ग्रंथी**
4) **पैराथायराईड ग्रंथी**
5) **पेन्क्रियाज ग्रंथी**
6) **एडरेनल ग्रंथी**
7) **सेक्स ग्रंथी**

## अन्तस्त्रावी ग्रन्थियॉ

| **शीर्ष क्षेत्र** | **ग्रीवा क्षेत्र** | **उदर क्षेत्र** |
|---|---|---|
| 1. पियूष ग्रंथी | 1. थायराईड ग्रंथी | 1- अग्नाशय |
| 2. पिनायल | 2- पैराथायराईड ग्रथी वक्ष | 2- सुप्रारीनल / अधिवृक्क |

### पियूष ग्रंथी

यह ग्रंथी आकार में अण्डाकार अथवा कुछ चपटी होती हैजो मस्तिष्क के आकार का स्फिनावंड (Sfinovd) अस्थि की गर्त में बन्द रहती है। मनुष्य में इसका भार लगभग 600 मिलीग्राम रहता है स्त्रियों में यह कुछ अधिक भारी होती है यह मटर के दाने के बराबर होती है। ग्रंथी के हार्मोन्स शरीर की बृद्धि, लैंगिक लक्षणों जनन विकास एवं सामान्य आचरण तथा अन्य सभी अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों की सक्रियता का नियमन करने के कारण इसे Mastar Gland भी कहा जाता है। Piush (पियूष) Pituitary Gland तीन भाग या पिण्डक होते हैं।

A. अग्रिम पिण्डक
B. मध्य पिण्डक
C. पश्य पिण्डक

**A. अग्रिम पिण्डकः**— यह हल्का गुलाबी रंग का होता है जो पियूष ग्रंथी का 75% भाग बनाता है। इससे लगभग 11 हार्मोंस निकलते हैं।

**(i) Sometotrofic Hormones (सोमेटोट्रॉफिक हार्मोंस)** :— यह हार्मोंस शरीर की सामान्य बृद्धि का नियंत्रण करता है। तथा प्रोटीन की उपापचय क्रियाओं को बढाकर बृद्धि को उत्तेजित करता है। इस हार्मोंस के कम स्त्राव से बृद्धि धीमी हो जाती है या रूक जाति है।

**(ii) Gondotrofic Hormones (सोमेटोट्रॉफिक हार्मोंस)** :— ये अण्डाकार एवं वृषण आदि लैंगिक अंगों को उत्तेजित करते हैं एवं जनेन ग्रंथियों की क्रियाओं पर प्रभाव डालते हैं।

**(iii) Thyroid Hormones (उत्तेजक हार्मोंस)** :— हार्मोंस थायराईड ग्रंथी की बृद्धि एवं स्त्रावण की क्रिया को नियंत्रित करता है।1

**(iv) Tiavetojenic Hormones (टाईवेटोजेनिक हार्मोंस), Prolekis** :— यह कार्बोहाईड्रेट एवं वसाओं के उपापचय को नियंत्रित करता है। यह ग्लूकोज की मात्रा बढाकर रूधिर में ग्लूकोज को बढा देता है।

**B. मध्य पिण्डकः**— मध्य पिण्डक अल्पविकसित एवं निष्क्रीय होता है इससे स्त्रावित ''मिलौनोसाइड'' प्रेरक हार्मोंस का स्त्रावण होता है।

**C. पश्य पिण्डकः**—

**(i) वेसोप्रेसित या पिटसेन** :— इसका मुख्य कार्य शरीर की सूक्ष्म रूधिर कोशिकाओं को संकुचित कर रूधिर दाव को बढा देना होता है साथ ही यह वृक्क की नलिकाओं द्वारा रूधिर स `जल के शोषण को बढावा देता है इसलिए इसे ''मूत्रालारोधी हार्मोंस'' भी कहते हैं।

**(i) Oxitosin or Pitosin आक्सीटोसिन या पिटीसन** :— शिशु के समय गर्भाशय की अनेच्छिक पेशियों के संकुचन या सिकुडने को उत्प्रेरित कर प्रसव पीड़ा उत्पन्न करता है।

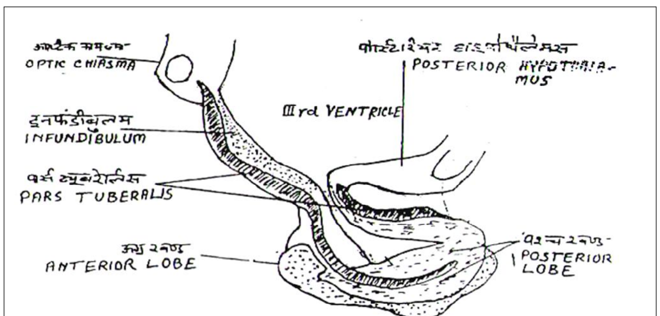


FIG. 50. पीयूष ग्रन्थि
THE PITUITARY

**सामान्य अवस्थाः—**

1. अस्थियों का विकास अच्छी तरह होता है।
2. सम्पूर्ण शरीर की बृद्धि में सहायक हैं।
3. पाचन क्रिया में सहायक होता है।
4. थायराईड, पैराथायराईड और प्रजनन ग्रंथी के हार्मोंस को नियंत्रण में करना।
5. शुक्राणु, अण्डाणु का विकास होता है।
6. माता के दूध को स्त्रावित करता है।

**असामान्य अवस्थाः—**

1. बोनापन होना।
2. शरीर त्वचा मोटी व खुरदुरी हो जाना।
3. स्मरण एवं विचार शक्ति की कमी होना।
4. मूत्र की मात्रा अधिक होना।
5. प्यास अधिक लगना।

**2. ग्रीवा क्षेत्र :—** 1

1. थायराईड ग्रंथीः— यह सबसे बड़ी अन्तःस्त्रावी ग्रंथी है तथा ग्रंथी का प्रत्येक पिण्ड लगभग 5 सेमी. लम्बा एवं 3 सेमी. चौड़ा होता है। यह गर्दन में वायु नास के अगले भाग में श्वसन तंत्र (लैरिन्स) की थायराईड की उपस्थि के आधार तल एवं भागों पर फैली **"H"** आकार द्विपादित ग्रंथी है। पूर्ण ग्रंथी का भार 25 ग्राम होता है। इस ग्रंथी के 2 हार्मोंस स्त्रावित होते हैं।
2. थाईरॉक्सिः— इसकी मात्रा 65% से 80% रहती है।
3. टायआवगेः— थाईरॉक्सि की अपेक्षा यह अधिक क्रियाशील है परन्तु इसकी क्रिया स्थाई नहीं रहती इसकी मात्रा 20% से 25% होती है।

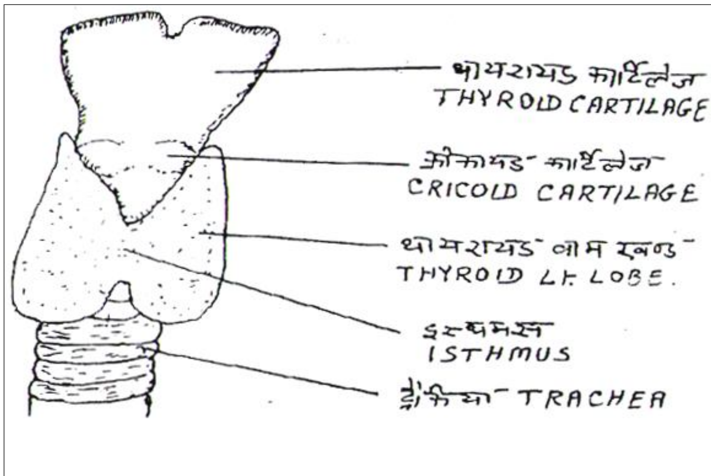


THYROID

**थायरॉक्सि के कार्यः–**

1. यह ऊर्जा उत्पन्न कर ऊर्जा को बढाता है।
2. यह अस्थियों से कैल्शियम व पी. एच. हटाता है तथा मूत्र में इसके उत्सर्जन को बढाता है।
3. हृदय की दर को बढाता है।
4. केन्द्रीय नाड़ी संस्थान की सामान्य क्रिया के लिए थायरॉक्सि होना आवश्यक है।
5. शरीर के तापक्रम को नियंत्रित करता है।

**थायराइड (Thyroid) की अल्पक्रियाशीलता :–**

(1) इससे शरीर में थायराक्सि की कमी हो जाती है जिससे इसका प्रभाव मनुष्य के उपापचय पर पड़ता है।

(2) बच्चों में थायराक्सि की कमी से जड़ता क्रेटिनिज्म रोग होता है जिससे शारीरिक एवं मानसिक वृद्धि रूक जाती है ऐसे बच्चों की त्वचा सूखी, ओठ एवं जीभ मोटी हो जाती है ये मंद बुद्धि के होते है एवं भविष्य में प्रजन्न योग्य नहीं होते।

(3) थायराक्सि की कमी से उपापचय की गति धीमी हो जाती है मिक्सीडिमा रोग उत्पन्न हो जाता है। इस कारण मोटा व भद्दा शरीर दिखने लगता है मनुष्य का स्वास्थ्य कमजोर एवं समय से पूर्व क्षीण हो जाता है बाल भी झड़ने लगते है।

(4) थायराइड ग्रंथी प्रचुर मात्रा में थायराक्सि नहीं बना पाती तथा फूल जाती है इसका कारण यह है कि आयोडीन युक्त भोजन सही मात्रा में न मिलना जिसके कारण घेंघा रोग हो जाता है।

**थायराइड (Thyroid) की अतिक्रियाशीलता :–**

उपापचय क्रियाओं की गति तीव्र हो जाती है जिससे घवराहट बढ़ जाती है, स्वभाव में चिड़चिडापन आ जाता है आँखों के नीचे चर्बी एकात्रित होकर आँखे बड़ी–बड़ी होकर बाहर निकल आती है ऐसे व्यक्ति की आँखे डरावनी घूरती हुई प्रतीत होती है।

**पैराथायराइड Glands :.**

Parathyroid gland मटर के दाने के बराबर 4 छोटी एवं गोल रचनाएं होती है जो Thyroid gland के पृष्ठ थल पर प्रत्येक चिन्ह पर स्थित होती हैं। कभी–कभी इनकी संख्या 02 से 06 तक होती है प्रत्येक ग्रंथी का भार 0.05 से 0.03 या 0.03 gm होता है तथा इसका परिमाण 4 से 6 millimeter होता है इन कोशिकाओं द्वारा स्त्रावित हार्मोन्स पैराथायराइड कहलाते है।

**पैराथायराइड के कार्य :–**

(1) इस Harmones का कार्य रक्त में Ca तथा Ph (फासफोरस) उचित मात्रा का नियमन करना है।

(2) यह Hormones पेशी के सामंजस्य को स्थापित करता है।

(3) हड्डियों एवं दांतों का उचित विकास इसी हार्मोन के द्वारा होता है।

(4) यह वृक्कनालिकाओं द्वारा Ca का अवशोषण कर उसकी गति को बढ़ाता है।

**पैराथायराईड (Para Thyroid) की अतिक्रियाशीलता (अधिकता) :–**

पैराथारमोन अधिक मात्रा में बनने पर Ca व Ph के लवण अस्थियों से निकलकर रूधिर में आने लगते है इस कारण अस्थियां कमजोर व विकृत (टेडी–मेडी) हो जाती है। इस रोग को केल्केमिया कहते है।

**पैराथायराईड (Para Thyroid) की अतिक्रियाशीलता :–**

पैराथायराइड कार्य करना बंद कर दे या इसके द्वारा स्त्रावित Harmones की कमी होने पर Ca व Ph का उपापचय असामान्य होने लगता है तथा इनकी कमी हो जाती है इस कारण हाथ–पैर एवं उंगलियों कि पेशियों सक्त हो जाती है। जिससे पेशियों का सकुंचन अनियंत्रित एवं अनियमित हो जाता है। शरीर की पेशी संबंधी क्रियाएं बंद हो जाती है। जिससे प्राणी की मृत्यु भी हो सकती है इस अवस्था को टिटेनी कहते है इस क्रिया में रक्त में Ca की मात्रा अधिक हो जाती है।

**थायमस ग्रंथी (Thymus gland) :-** मनुष्य में यह थारोसिक गुहा में हृदय के ठीक आगे स्थित होती है। यह द्विपादित चपटी एवं गुलाबी रंग की ग्रंथी है इस ग्रंथी में थाइमेसिन Harmones स्त्रावित होता है यह ग्रंथी जन्म से शिशु में विकसित अवस्था में होती है बच्चों में यौवन अवस्था या किशोर अवस्था 14 से 16 वर्ष की आयु तक यह ग्रंथी बड़ी होती है और लैंगिक प्रोणता प्राप्त होने तक निष्क्रीय एवं छोटी होकर वृद्ध अवस्था में एक तंतु या डोरी के रूप में रह जाती है।

**थायमस ग्रंथी Thymus gland के कार्य :–**

(1) जन्म से पहले इस Gland में रोगनाशक 'लिम्पोसाइट्स' का निर्माण होता है।

(2) जन्म के तुरंत बाद से यह ग्रंथी Thymesin Harmones उत्पन्न करती है जिससे Limphosides सक्रिय होकर प्लाजमा कोशिकाओं का रूप धारण कर रोग उत्पादक जीवाणुओं अथवा प्रोटीन्स को सक्रिय करने के लिए Antibiotic का निर्माण करती है एक बार शरीर में Antibiotic बनने के बाद शरीर में प्रतिरक्षा क्षमता (इम्यूनिटी) सदा बनी रहती है।

**उदर क्षेत्र –**

**(1) अग्नाशय (Pancreas):-**

यह Gland मनुष्य में उदर गुहा में आमाशय के पीछे ''ड्यूओडिनम'' की गुहा के समीप स्थित होती है अग्नाशय बाह्य स्त्रावी एवं अंतः स्त्रावी ऊतकों से बनी हुई है। यह मिश्रित ग्रंथी अग्नाशय से पेनक्रियोटिक, पाचक विकारों का स्त्रवण कर भोजन के पाचन में भाग लेता है। अग्नाशय का निर्माण पिन्डो से घिरे अतः स्त्रावी कोशाओं के छोटे–छोटे ठोस समूहों द्वारा होता है इससे दो प्रकार के हार्मोन्स स्त्रावित होते है।

(i) इनसुलीन

(ii) ग्लूकोगाँन

कार्बोहाइड्रेट प्रधान भोजन के बाद शरीर में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है तभी इन्सूलीन स्त्रावित होकर मस्तिष्क की कोशिकाओं एवं लाल रूक्षाणु को छोड़कर शरीर की सारी कोशाओं की ग्लूकोज के लिए पारगम्यता बढ़ा देता है जिससे कोशाओं रक्त से अधिक ग्लूकोज लेकर उपयोग करने लगती है।

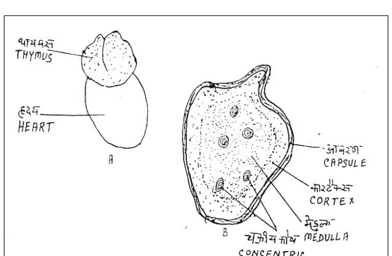

थायमस ग्रन्थि Thymus Gland

**इनसुलिन के अतिस्त्रावण का प्रभाव :–**

शरीर पर इन्सूलीन अधिक स्त्राव से शरीर कोशिकाओं रूधिर में ग्लूकोज की अधिक मात्रा लेने लगते है जिससे रूधिर में ग्लूकोज की कमी हो जाती है मनुष्य का इस अवस्था में अधिक देर तक रहने पर उसकी दृष्टि, ज्ञान एवं जनन क्षमता कम हो जाती है बेहोशी एवं थकावट मेहसूस होती है।

**इन्सुलिन के कम मात्रा में स्त्रावण का प्रभाव :–**

इन्सुलिन के कम स्त्रावण से शरीर कोशिकाओं रक्त में संचालित ग्लूकोज का ठीक से उपयोग नहीं कर पाती जिससे रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है और ग्लूकोज मूत्र के साथ उत्सर्जित होने लगता है यदि रक्त में ग्लूकोज की मात्रा अधिक बढ जाती है तो मधुमेह  हो जाती है। इससे ''बहुमूत्रलता'' होती है प्यास की शिकायत होने लगती है ग्लूकोज की कमी से बेहोशी आने लगती है एवं शरीर कमजोर हो जाता है और कभी–कभी तो व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाती है मनुष्य के रक्त में ग्लूकोज की मात्रा 100MGS/ 100ML होती है।

**ग्लूकोगॉन :–**

ग्लूकोगॉन हार्मोन्स रूधिर में ग्लूकोज की मात्रा सामान्य से अधिक बढ़ने पर स्त्रावित होती है जिससे रूधिर में ग्लूकोज की मात्रा घटने लगती है ग्लूकोज ऐल्का कोशिका द्वारा स्त्रावित होती है।

**(B) ऐड्रिनल ग्रंथी अधिवृक्क :–**

यह ग्रंथि प्रत्येक वृक्क के ऊपर सिरे पर अन्दर की ओर एक छोटी भूरे रंग की टोपी के समान रचना के रूप में स्थित होती है ये संख्या में दो होती है प्रत्येक वृक्क के ऊपर रहती है इस ग्रंथि पर एक आवरण चढ़ा होता है जिसे 'केप्सूल' कहते है इस ग्रंथि के दो भाग होते है।

(1) कार्ट्रेक्स

(2) मैडमूला

इससे दो हार्मोन्स स्त्रावित होते है :–

(1) ऐपीनक्रीज

(2) एड्रीनेलिन

(1) नोरऐपीनक्रीज या नोरएड्रीनेलिन अधिक मात्रा में श्रावण होने पर पसीना आने लगता है फिर दर्द होने लगता है कमजोरी आने लगती है चक्कर आने लगते है।

**अधिक मात्रा में स्त्रावण होने पर** :– पसीना आने लगता है सिर में दर्द होने लगता है।

# इकाई–3

## पाचन तंत्र (Digestive)

हमारे शरीर के जो अंग भोजन को पचाने में भोज्य तत्वों को रक्त मिलने तथा प्रत्येक कोशिका तक पहुँचाने में सहायक होते है। उनके सामूहिक रूप को पाचन तंत्र कहते है पाचन तंत्र का मूल्य कार्य भोजन ग्रहण कर उसे संभागीय करण योग्य बनाना होता है।

पाचन एक रासायनिक क्रिया है जिसमें भोजन के अधुलनशील अणुओं को घुलनशील अणुओं में परिवर्तित कर देता है हमारे खाद्य पदार्थों में कार्बोहाइड्रेट Vitamins खनिज पदार्थ खनिज श्रवण जल आदि पदार्थ का समावेश होता है।

**पाचन का प्रयोजन :–**

पाचन का मुख्य कार्य भोजन का पचाना पचे हुए भोज्य तत्वों को शोषित करना और बचे हुए व्यर्थ पदार्थ को बाहर कर देना है क्योंकि अवशोषित भोजन से शरीर को गर्मी तथा काम करने की शक्ति पूर्ति के लिए आवश्यक पोष्टिक तत्वों की प्राप्ति होती है।

मनुष्य की आहार नाल 32 फिट लम्बी है अतः यह कुण्डालिनीकृत होती है।

## पाचन तंत्र Digestive (System)

### पाचन पथ

- मुँह (Mouth)
- ग्रसनी (Phalryrax )
- ग्रासनली (Aesophagus)
- आमाशय (Stomach)
- छोटी आंत (Small intesting)
  - ड्यूडोनम
  - जेज्यूनय
  - इलियम
- बड़ी आंत (Lorge metesting)
  - सीकन (Cecun)
  - कोलोन (Colon)
    - (i) एसेन्डिग कोलोन
    - (ii) टान्सर्वस कोलोन
    - (iii) डिसेन्डिन कोलोन
- रेक्टम Recturn
- एनल (गुदा) Anal

### सहायक अंग

छः चार ग्रंथियाँ

- कर्ण मूल
- जिव्हा घर
- जब्डे की ग्रंथियाँ
- जीभ
- दांत
- लीवर (यकृत)
- गालब्लेडर
- Pencrease
- गालब्लेडर
- Pencrease
- आन्य ग्रंथियाँ
- एपेन्डिकस

**पाचन क्रिया के अंगों की रचना :—**

**(1) आहार नाल :—**

आहार नाल निचले भाग का बना होता है।

(1) मुँह
(2) ग्रसनी
(3) ग्रासनली
(4) आमाशय
(5) छोटी आंत
(5) बड़ी आंत

**(1) विभिन्न ग्रेन्थियाँ (Glands) :-**

जो पाचन रसों को शक्तिशाली कर आहार में उडेलती है तथा यही पाचक रस भोजन पर क्रिया कर उसको पचाते है पाचक रसो का स्त्रावण करने वाली निम्न ग्रंथिया है।

**(A) 6 लार ग्रंथि :—**

यह मुंह में लार उडेलती है यह इस प्रकार है यह तीन तरह की होती है।

(i) कर्ण मूलग्रंथि — यह दो होती है यह कान के आगे व पीछे होती है।
(ii) जीव्हाघर gland — यह दो ग्रंथि जीव्ह के नीचे होती है।
(iii) जबड़े की gland — यह दो glands निचले जबड़े के नीचे होती है।

**(B) Gasstic (गेस्टिक) :—**

यह आमाशय में गेस्टिक इस स्त्रावित करती है।

**(C) अग्नाशय रस ग्रंथियाँ :—**

यह छोटी आंत ड्यूडेनम में आनाशय रस स्त्रावित करती है।

**(D) यकृत** :– यह भी ड्यूडेनम में पित्त रस स्त्रावित करता है।

**(E) आत्र ग्रंथियाँ** :– यह छोटी आंत में आत्र रास स्त्रावित करती है।

**मुख** :– मुखगुहा फार्श (फर्श) से जीव्ह जुड़ी रहती है जो पीछे से मुड़ी और आगे से स्वतंत्र होती है। इसकी हद को तालु कहते है। मुंह के तीन अंग होते है।

(1) जीव्ह
(2) दांत
(3) लारग्रंथियाँ

**(1) जीव्ह** :–यह एक मांसल अंग है जो मांसपेशियों से बनी होती है इसमें स्वाद कलिकाएं होती है जीव्ह के कार्य :

यह स्वाद का अंग है इसके द्वारा मीठे खट्टे स्वादों का ज्ञान हमें स्वाद कलिकाओं से होता है।

यह भोजन को चबाने में सहायक होती है भोजन को निगलने में सहायता करती है बोलने में मद्द करती है यह दांतों को साफ करती है।

**दांत** :– हम भोजन करते है तो दांतों का महत्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि भोजन इन्हीं के द्वारा पचने योग्य बनाया जाता है जीवन काल में दांत दो बार निकलते है कुछ स्थाई होते है और कुछ अस्थाई। एक वयस्क में दांतो की संख्या 32 होती है।

**(A) छिद्रक या कुतरने वाले दांत** :– संख्या – 08 (4+4)
**(B) भेदक या चीरने वाले दांत** :– संख्या – 04 (2+2)
**(C) अग्रचबर्णक वाले दांत** :– संख्या – 08 (4+4)
**(D) चबर्णक या पीसने वाले दांत** :– संख्या – 12 (6+6)

**लारग्रंथियाँ** :—ये ग्रंथि सबसे बड़ी ग्रंथी है जो चेले रूपी कोष्ठो के अनेक समूहों की बनी होती है ये संख्या में 6 होती है कर्णमूल जीभाधार जबड़े की ग्रंथि इनका स्त्राव अनेक छिद्रो द्वारा मुख तल में आता है ग्रंथियों में से लार निकलती रहती है अधिक धूप या स्वादिष्ट भोजन खाने से अधिक लार निकलती है लार पानी के साथ क्षारीय तरल है इसमें पानी तथा लवड़ व डायलूट (dilute) एन्जाइम पाये जाते है।

**लार के कार्य** :— लार भोजन को गीला कर देती है अतः चबाने में आसानी रहती है। गीले भोजन को आराम से निगल सकते हैं लार भौतिक क्रिया द्वारा जीभ को साफ रखती है। जब भोजन अच्छी तरह सें चबाकर गीला कर दिया जाता है तो ग्रीवा उसे एक पिण्ड या गोली बनाकर निगलने में सहायता करती है व भोजन ग्रसनी में आसानी से चला जाता है और फिर अन्ननलिका में प्रविष्ट होता है।

**ग्रसनी** :—ग्रसनी मुंह तथा स्वर तंत्र के पीछे स्थित होती है यह एक पेशीय तथा कला से निर्मित पथ है जिसका चौड़ा भाग ऊपर तथा सकरा भाग नीचे की ओर रहता है ग्रसनी की लम्बाई लगभग 12 सेमी. होती है मुंह से भोजन की लुगदी ग्रसनी में आती है।

**अन्नन नलिका (ग्रास नलिका)** :—यह लगभग 25 से.मी. लम्बी होती है जो ग्रसनी से आरंभ होकर गर्दन में ट्रकिया की प्रष्ठ सतह से होते हुये डायफ्राम को भेदकर आमाशय में खुलती है इसकी दीवार मोटी व पेशीय व सकुचनशील होती है इसकी दीवार के संकुचन एवं विमोचन में भोजन आगे बढ़ता है इसकी दीवार में श्लेष्मा ग्रंथियों पाई जाती है जो दीवार को नर्म एवं रसदार बनाए रखती है। जिसमें भोजन आराम से सटकर आमाशय में पहुँच जाता है।

**आमाशय** :— भोजन के आमाशय में पहुँचने से पहले ही उद्दीपन से आमाशय की जठर ग्रंथियों जठर रस का स्त्रावण आरंभ कर देती है। ऐसा अनुमान है कि मानव के आमाशय की लगभग 3.5 करोड जठर ग्रंथियाँ जो 2 से 3 लीटर जठर रस प्रतिदिन स्वावित करती है जिसमें 97.99 प्रतिशत Water 0.2- 0.5% (हीमोग्लोविन) बल्कि अन्य बाकी म्यूसक लवण एवं विकास होता है। यह हल्के पीले रंग की अम्लीय स्त्राव की म्यूकस आमाशय की दीवारों को चिकना करके उसकी रक्षा करता है।

भोजन के साथ आए जीवाणुओं को नष्ट कर देता है और भोजन को सड़ने से बचाता है जिस समय भोजन आमाशय में जाता है। यह क्षारीय होता है। आमाशय लगभग 24 से.मी. मासपेशी से बना एक खोखली थैली जैसा होता है इसका अधिक चौड़ा भाग बायी ओर सकरा भाग दायी ओर होता है।

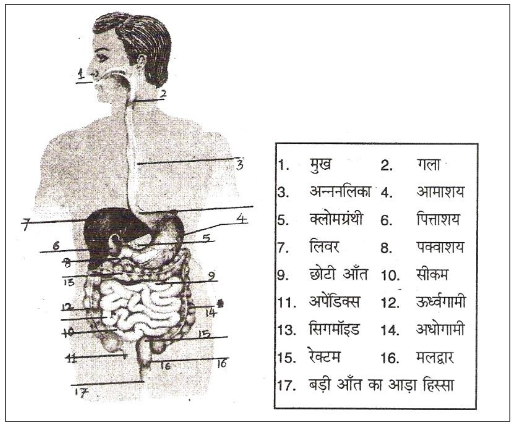


**आमाशय के कार्य :–**

(1) भोजन के छोटे कणों में विभक्त होने के लिए सहायता करता है।

(2) विटामिन बी–12 का शोषण करता है।

(3) भोजन का विघटन – रेशों के संकुचन विकुचन क्रिया कई दिशाओं में होने से आमाशय के अन्दर का भोजन घूमता, दबता, निचुड़ता हुआ उसका गहन मंथन होता है। इस प्रकार भोजन नन्हे कणों में विभक्त हो जाता है।

**छोटी आंत** :– छोटी आंत आमाशय के मुद्रिका द्वार से लेकर बड़ी आंत तक फैली होती है 6 से 7 मीटर लम्बी होती है जो अन्दर से मुड़ी–घुमड़ी अवस्था में पड़ी रहती है इसके तीन भाग होते है –

(1) ड्यूनियम (ग्रहणी) (2) जेजोनम (3) इलीयम

**ड्यूडेनियम** :– छोटी आंत के आरंभ से 25 से.मी. का भाग पक्वाशय कहलाता है इसका आकार घोडे की नाल के समान होता है।

**जेजोनम एवं इलीयम** :– ये उदरीय गुहा में सामने की ओर कुण्डलिनी के आकार में विद्यमान रहते है।

**छोटे आंत के कार्य :–**

(1) आत्र अंकुर की गतियाँ आहार की आंत में मिश्रित करती है।

(2) पोषक पदार्थ के अवशोषण में सहायता करती है।

(3) छोटी आंत के अवशोषण स्थल को विस्तार देती हैं

(4) आमाशय से आने वाले कायाम अथवा तरल भोजन का छोटी आंत में पाचन होता है।

पाचन की क्रिया अग्नाशय रस पित्त रस तथा आंत रस द्वारा की जाती है।

**बड़ी आत :–** बड़ी आंत वह नली है जो छोटी आंत को बाहर त्वचा तक पहुँचाती है इसकी लम्बाई 1.5 सेमी. होती है। बड़ी आंत के नीचे निचले भाग में जो बंद आंत है उसे सीकम कहते है इसके निचले हिस्से में 5 से 10 से.मी. लम्बा हिस्सा लटकता है। जिसे अपेन्डेक्स कहते हैं। बड़ी ऑत का पहला भाग दाहिनी ओर से सीधा ऊपर जाता है। इसे आरोही Colam (Ascending colam) कहते है यह यकृत तक जाकर बायी ओर मुड़ जाता है। इसका आगे का भाग जो आडी colan (Transverse colan) कहलाता है। तीसरा नीचे जाने वाला भाग Descending colan कहलाता है बडी आंत की दीवार चार परतों की बनी होती है

1. सिरस सिल्ली
2. पेशीय परत
3. संयोजी ऊतक की परत
4. म्यूकस झिल्ली का अस्तर

मलाशय बडी आंत का 15 से.मी. लंबा भाग है यह श्रेणी प्रदेश का श्रेणी गुहा में पीछे की तरफ सीधा नीचे पहुँकर गुदा नली से निकलता या मिलता है यह नली 4 से.मी. लम्बी होती है तथा बाहर त्वचा पर छिद्र द्वारा खुल जाती है। जिसे मूत्र द्वार कहते है।

**बड़ी आंत के कार्य :–**

(1) पानी व लवण का अवशोषण।

(2) मल का निष्कासन

बड़ी आत में पानी का अधिकांश भाग शोषित कर दिया जाता है जो शेष पदार्थ बचता है वह मल कहलाता है बड़ी आंत में बचे हुए उपयोगी पदार्थों की दुर्गंध उत्पन्न हो जाती है भोजन के सेल्यूलोज जैसे अपचित अपचित पदार्थ भी इसमें होते है। आंत के स्नायु के आकुंचन के कारण मल आगे ढकेला जाता है व शरीर के बाहर निकाल दिया जाता है।

**अवशोषण** :– इसका काम छोटी आत की सतह की कोशिकाओं द्वारा किया जाता है जहां से ये शोषित कार्य पदार्थ रक्त कोशिकाओं में पहुँचकर Portte शिराओं द्वारा यकृत तक पहुँचाते है प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट तथा वसा के अवशोषण की पूरी प्रक्रिया छोटी आंत के द्वारा होती है आमाशय में भोजन की कुछ मात्रा अवशोषित होती है प्रोटीन को अमीनो अम्ल के रूप में तथा कार्बोहाइड्रेट सरल राकरा के रूप में अवशोषण का काम करती है। वसा को वासीय अम्ल के रूप में अवशोषण के काम में भिलाई के या भिलाई के बाहर की कोशिकाओं द्वारा किया जाता है पर वसा पदार्थ वासीय वाहिकाओं द्वारा किया जाता है।

**पाचन तंत्र पर योग का प्रभाव** :–

योगभ्यास करने से पाचन शक्ति मजबूत हो जाती है आंतों से पोषक तत्वों का अवशोषण की उचित प्रक्रिया होने से उयापचय सही होता है सही उयापचय से पोषक तत्वों का मंजर शरीर के अंगों में एकत्रित रहता है जो आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग में लिया जाता है।

(1) योगाभ्यास से पाचन क्रिया के समस्त अंग पुष्ट होकर उसकी कार्यकुशलता बनी रहती है एवं बढ़ती जाती है।

(2) भोज्य पदार्थों का पाचन होते ही भूख बढ़ जाती है।

(3) आंतों की कार्यक्षमता बढ़ती है जिसके कारण विकार उत्पन्न करने वाले दूषित तत्व उत्सर्जित अंगों तक पहुँचकर बाहर फेक दिया जाता है।

(4) गैस, कब्ज, अम्ल पित्त आदि का निवारण होकर सम्पूर्ण रूप से शरीर स्वस्थ्य रहता है।

(5) खाद्य पदार्थों का अच्छी तरह पाचन होने से पोषक तत्वों का भण्डार बढ़ जाता है। जो यथा समय बढ़ जाता है।

(5) उद्यान बंध, नाली, कपालभाती, मयूरासन से पाचन प्रणाली की कमजारी दूर होकर उदर ग्रुहा के अन्दर के सभी नर्म ऊतकों को अच्छा करता है जिससे अंगों की सुदृढ़ता बनी रहती है वस्त्र धौति का संबंध मुख्यतः अन्ननलिका या आमाशय से होता है आमाशय से निकली हुई धौति 20 मिनिट के आसपास छोटी आंत में जाने की संभावना होती है। इसीलिए ज्यादा से ज्यादा 15 मिनिट तक ही धौति को आमाशय में रखना ठीक है यह अन्य नलिका और आमाशय के विकारों को निकालती है।

एक स्वस्थ्य पाचन और निष्कासन संस्थान की आवश्यकता शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का आधार स्तभ है क्योंकि इस संस्थान की लम्बे समय तक रहने वाली गड़बड़ी के फलस्वरूप अनेक जीर्ण तथा उपाचय संबंधी बीमारियाँ उत्पन्न होती देखी गई है चूंकि प्रबुद्ध या विभूतीवान योगी जिन्होने योग की आवश्यकता का पूर्व अनुमान लगा दिया या उन्होंने पाचन संस्थान के महत्व का अनुभव किया है तथा प्राथमिक अभ्यासों में शुद्धिकरण तथा पेट को स्वस्थ्य रखने की क्रियाओं पर अधिक बल दिया है। उन्होंने आसन प्राणायाम के कुछ विशेष अभ्यासों तथा षटकर्मो के एक वृहद स्वरूप को महत्वपूर्ण माना है जिसमें धोती नौली वस्ती इत्यादि है सभी का लक्ष्य पाचन नालिका को शुद्ध एवं स्वस्थ्य रखना है तथा शारीरिक अंगों को सुदृढ़ता प्रदान करना है।

# पाचन क्रियाओं का संक्षेप में वर्णन

| क्र. | पचन अंग | पाचक रस | क्षारीय अम्लीय | एन्जाइम | एन्जाइमों की रासायनिक क्रिया |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | मुख | लार | क्षारीय माध्यम | डायलीन | पके हुये स्टार्चो को विलिय शर्करा में बदलता है |
| 2. | आमाशय | जठर रस | अम्लीय माध्यम | (i) रेनम | कोशीनोजन को केशीन में बदलता हैं |
| | | | | (ii) पेटुसन | प्रोटीन को पेटिसन में बदलता है |
| | | | | (iii) लारपेज | वसाओं का डायटोलिसिज आरंभ करता है |
| 3. | वक्वाशय (ग्रहणी) | पित्त | क्षारीय माध्यम | | अग्नाशय, एन्जाइमो की कार्यक्षमता को बढाने में योग दान करता है। |
| | | अग्नाशय रस | क्षारीय माध्यम | (i) टिटिसन | प्रोटीन तथा पेप्टानों को एमीनो एशिड में परिवर्तित करता है। |
| | | | | (ii) एमाइलीज | सभी शर्कराओं तथा स्टार्चों को मालटोन में परिवर्तित करता है। |
| | | | | (iii) लाइपेज | वसाओ को वसा अम्लो तथा ग्रासलीन में परिवर्तित करता है। |
| 4. | छोटी आंत | आत्र रस | क्षारीय माध्यम | (i) एटारोकाइनोज | अग्नाशय रस से डिस्सीन निर्मित करता है। |
| | | | | (ii) मालटोज | जो ग्लूकोज में बदलता है। |
| | | | | (iii) इरेप्लिसन | सभी प्रोटीन पदार्थों को एमीनोएसिड में बदलता है। |

**स्वचलित नाडी संस्थान (Autonomic nervous System ) :–**

नाड़ी संस्थान असरूप नाड़ी कोषाणुओं द्वारा बना है नाड़ी कोषाणुओं को न्यूट्रान कहते है न्यूट्रान के माध्य में केन्द्रक होता है न्यूट्रान (Newtran) से एक लम्बी शाखा निकलती है जिसे एक्सान (Axan) कहते है। इसके अलावा न्यूट्रान से अनेक शाखा निकलती है। जिसे ड्रेन्ड्राइट (Dendrite) कहते है इस प्रकार अनेक नाड़ी कोषाणुओं की एक श्रंखला बन जाती हैं उसे नर्व या नाड़ी फाईवर कहा जाता है। इस नर्व फाईवर की यह विशेषता होती है, कि उसमें संवेदना या प्रेरणा का सग्वाहन हमेशा एक ही दिशा में होता रहता है। इसीलिए इन नाड़ियों को दो प्रकार में विभक्त किया जाता है।

(1) संवेदना ग्राहक

(2) संवेदना वाहक

**संवेदना ग्राहक** :– जो शरीर के विभिन्न अंगों से मस्तिष्क व सुषुम्ना नाड़ी की ओर संवेदनाओं का वहन करती है उन्हें संवेदना ग्राहक कहते है।

**संवेदना वाहक** :– जो मस्तिष्क व सुषुम्ना नाड़ी से शरीर के विभिन्न अंगों के प्रेरणा व सम्वेदना का वहन करते है उन्हें संवेदना वाहक कहते है।

नाड़ी संस्थान के दो मुख्य विभाग होते है :–

(1) मध्यवर्ती या इच्छावर्ती नाड़ी संस्थान

(2) अनेच्छा वर्ती नाड़ी संस्थान

(1) मध्यवर्ती के दो भाग होते है। मस्तिष्क एवं सुषुम्ना

**मध्यवर्ती**

मस्तिष्क

सुषुम्ना नाड़ी

## NERVOUS-SYSTEM

### NERVOUS TISSUE

Nervous tissue originates from ectoderm and is specialized for receiving stimuli(Excitability) and transmit message(conductivity)

### NERVOUS TISSUE

- Neuron
  - Cyton
  - Process of Neuron
- Neuroglia

### NEURON

**Unit of Nervous tissue - nerve cell(neuron)**

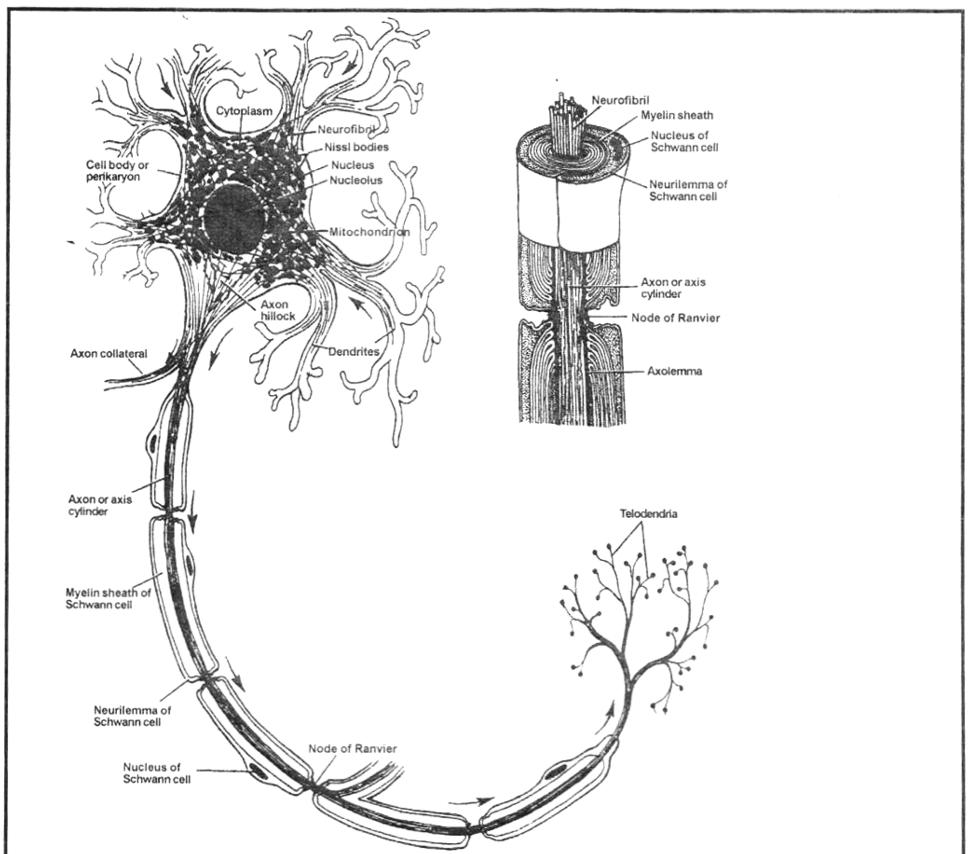

**मस्तिष्क** :– यह हमारी खोपड़ी के अन्दर स्थित रहता है तथा वहाँ सुरक्षित रहता है पर नीचे से ऊपर की ओर निम्न अंगों से मिलकर बना होता है।

(1) मेड्यूला

(2) पौन्सनाड़ी

(3) लघु मस्तिष्क

(4) मध्य मस्तिष्क

(5) जेने बुलेटवाड़ी

(6) बेसल गेगलियों

(7) सेरीब्रम

(8) हाईयोथेलेमस

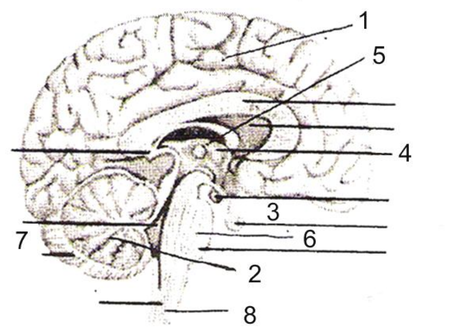

मस्तिष्क

यह तंत्र सारी क्रियाओं पर नियंत्रण व नियमत करता है। मनुष्य का मस्तिष्क सबसे अधिक विकसित मात्रा में होता है।

**Yogic Management of Nervures System**

**नाड़ी संस्थान पर योग का प्रभाव** :–

इस तंत्र का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण शरीर की सम्पूर्ण क्रियाओं जैसे स्थिर, स्थिति हलचल आदि संयोग और समन्वय के आधार पर नियंत्रित करना इस तंत्र का मुख्य उदे्श्य है सभी तंत्र अलग–अलग नियंत्रण में रखना और उनमें समसूत्रता लाना। समन्वय रखना और पूरे शरीर की अखण्डता कायम करना किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति में शरीर का संरक्षण करना वाहन वातावरण के साथ सम्पर्क में रहकर शरीर को अनुकूल बनाना शरीर को विश्राम नींद्र या जागृत अवस्था में रखना ये सारे कार्य हमारे नाड़ी तंत्र पर निर्भर करता है।

(1) हमारा ध्यान हमेशा वाह्य वातारण से आने वाली संवेदनाओं की तरफ आकर्षित होता है और इसीलिए हमारा मन बाहर की ओर रहता है मन को अन्दर की ओर ले जाने के लिए एक तंत्र साधन है श्वास प्रश्वास। इसीलिए हठयोग में प्राण धारणा की संकल्पना दी है रोज के देननदिनी, व्यवहार में हम हमेशा अपनी इच्छानुसार यानि मस्तिष्क से काम करते है ऐसे में हम समय पर अपनी वैचारिक विश्लेषणात्मक बुद्धि काम करती हे आसन प्राणयाम आदि बहिरंग योग का प्रमुख उद्देश्य यह है कि नाड़ी तंत्र को अच्छी तरह से मजबूत व विकसित करना ताकि आध्यात्मिक जागृति कुण्डालिनी शक्ति जागृत होने पर उसे तोस सके सहन कर सके।

(2) नाड़ी तंत्र अच्छी तरह से प्रशिक्षित एवं विकसित होने से ही मानसिक स्थिरता एकाग्रता बढ़ती है जो ध्यान आदि अन्तरंग योग के लिए आवश्यक है।

(3) योगाभ्यास से कार्य में निखार एवं कुशलता बढ़ाने के कारण किसी भी एक कार्य को करने के लिए प्रारंभिक अधिक ऊर्जा शक्ति का व्यय की अपेक्षा कम ऊर्जा व्यय होती है।

(4) योगाभ्यास से किसी भी कार्य को करने के लिए नाड़ी तंत्र के आदेश प्राप्ति की आवश्यकता होती है क्योंकि तंत्रिकाओं में संदेश तथा आदेश शीघ्रता से मिलने लगते हैं उसके कारण सायनेस में 3 रूकावट आने वाले समय में कमी आती है जिसे हम प्रतिक्रिया समय में सुधार करते है।

(5) योगाभ्यास के प्रभाव से अनुकम्पीय परानुकम्पीय नाड़ी संस्थान को कम करने का और सान्यता प्रास्थापित करने का अच्छा मौका व पर्याप्त समय मिलता है इसके फलस्वरूप मनोकायिक सान्त्यता व प्रसन्नता छा जाती है और नाड़ी तंत्र हृदय और श्वसन का कार्यभार हल्का हो जाता है।

नाड़ी संस्थान पर नि.लि. आसन प्रभाव डालते है।

पदमासन, शीर्षासन, धनुरासन, मयूरासन, भुजगांसन, मत्स्यासन, प्राणायाम :– भस्त्रिका (Stoce) एवं कपालभाति क्रिया नाड़ी तंत्र की स्थिरता के लिए सहायक है।

आसन प्राणायम आदि क्रियाए मूलतः नामी और उसके आसपास के प्रदेश तथा कटी क्षेत्र (प्रदेश) और सुषुम्ता के आखरी हिस्से पर प्रभाव डालती है वहां पर रक्त संचार बढ़ता है जिससे नाड़ी तंत्र की शाखाएं आज्ञाग्राहक संग्रहित कर बनाती है और उत्तेजित भी होती है इन्हीं आक्षासग्राहको से आने वाली सर्वचा नई किस्म की संवेदो व कारण नाड़ी केन्द्रों को नई दिशा व प्रेरणा मिलती है इन संवेगों को समझने के लिए परानुकम्पीय नाड़ी तंत्र होता है जिनसे नई तरह की उत्तेजनाएँ हमे मिलती है ध्यानात्मक आसन एंव ध्यान दोनों नाड़ी का स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण काम करती है उसमें अनुलोम विलोम नाड़ी शोधन आदि भी इसकी शुद्धि के लिए आवश्यक है नाड़ी विभाग की दृष्टि से इस तंत्र के 3 भाग है।

(1) एच्छिक (केन्द्रीय नाड़ी तंत्र)

(2) अनेच्छिक (स्वान्य नाड़ी तंत्र)

(3) प्रांतीय (नाड़ी)

**निष्काशन संस्थान पर योग का प्रभाव** :–रक्त की गति तीव्र होने से फेफड़े भी तीव्र गति से कार्य करते है अतः उनकी श्वसन क्षमता बढ़ती है वे अधिक $O_2$ ग्रहण करके रक्त शुद्धिक्रियाओं में अधिक $CO_2$ निकालते है इससे अधिकतम विकार दूर हो जाते है हमारे शरीर के विकार पुनः पदार्थ मल के रूप में बाहर निकलते है इस प्रकार फेफड़े यकृत गुर्दे त्वचा नाड़ी आंत आदि उत्सर्जी अंगों की कार्यक्षमता के प्रभाव में योगाभ्यास की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इससे शरीर के विकारयुक्त पदार्थ बाहर निकलने में सहायता प्रदान करते है। हमारे शरीर में दाहिनी ओर बायी ओर कमर के हिस्से में एक वृक्क स्थित होते है इनमें धमनी से आने वाले रक्त के दबाव के कारण रक्त से मल (Uria) मूत्र अंग और जल प्रथक हो जाते है। पाचन क्रिया में उपाचय पदार्थ त्याज्य अंग मल के रूप में शरीर के बाहर फेक दिये जाते है। मल के साथ जीवायु, कीटाणु, पानी के अंश बाहर निकल जाते है मलाशय से

पर्याप्त मल संचित होने पर दबाव पड़ता है और मलाशय में एक संकुचन होता है गुदा संकुचित पेशी के संकोच प्रसरण से हम मल त्याग व सौच कर सकते है।

कुछ जलीय मल श्वेत पसीने के माध्यम से शरीर से बाहर फेक दिये जाते है। त्वचा के नीचे श्वेत ग्रंन्थियाँ पायी जाती है। इसकी नालिका त्वाचा के वाहरी स्तर पर खुलतीं हैं श्वेत के माध्यम से शरीर से कुछ क्षार जैसे नमक Na, ph और यूरिया, पानी बाहर फेका जाता है यह निष्कासन व वातावरण का तापमान नियंत्रित करता है या हम कितना पानी पीते है बृक्को पर काम का कितना बोझ है तथा विभिन्न भावनाए जैसे घबराहट, चिंता आदि पर निर्भर करता है।

योग में मलशुद्धि नाडी शुद्धि पर विशेष बल दिया जाता है। इसमें शरीर व मानसिक शुद्धि में बट क्रियाए दी गई है। शरीर व मन का समन्वय व संतुलन बढ़ाने का काम योग प्रक्रिया करती है और इसी से निरोगी या स्वास्थ्य अवस्था कायम रहती है।

आसन – पवनमुक्त, पच्मिोतासन, धनुरासन, मयूरासन, बज्रासन, अर्धमत्सेन्द्रासन, उलानपादासन, नाकासन।

**निष्कासन संस्था (Excretory system) उत्सर्जन तंत्र** :– यह क्रिया जिसके द्वारा उपाचय की क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न अवशिष्ट पदार्थो को शरीर से त्यागने की क्रिया उत्सर्जन या निष्कासन कहलाती है एवं बाहर निकाले जाने वाले पदार्थों को उत्सर्जी पदार्थ कहते है उत्सर्जन द्वारा शरीर में बने हानीकारक पदार्थों को बाहर निकाला जाता हैं

भोजन के पाचन तथा कोशिकाओं के विनाश से कई प्रकार के विकार उत्पन्न होते है। यह विकार ठोस, द्रव्य तथा गैसो के रूप में रहते है इन विकारो को देर तक शरीर में बने रहना हानिकारक हो सकता है। अतः इसका शरीर से नियमित रूप से निष्कासन होते रहना अत्यंत आवश्यक है इन विकरों को शरीर के बाहर करने के लिए विशेष अंग होते है जिसे उत्सर्जी अंग कहते है। इन अंगों द्वारा

विकरों को (विषैले पदार्थ) शरीर से बाहर निष्कासित करने की क्रिया उत्सर्जन क्रिया कहलाती है। ये अंग है :–

(1) त्वचा
(2) फेफड़े
(3) यकृत
(4) बड़ी आत
द्वारा मल निष्कासन होता है।

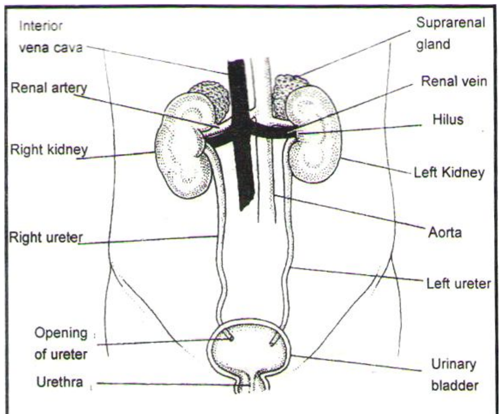

External Structure of Urinary System

**Kidney (वृक्क)** :–

मूत्र तंत्र की संरचना में निम्न अंग होते है :–

(1) दाहिने और बाये वृक्क या गुर्दे या किडनी उत्सर्जन ग्रंथियाँ या एक जोडे वृक्क (गंन्थियाँ)।
(2) एक जोड़ी मूलवाहिनियाँ एवं दाहिने व बाएँ वृक्क।
(3) एक मूत्राशय या मूत्र संग्रहालय
(4) मूत्रमल (निष्कासन मार्ग)

**Kidney की संरचना एवं कार्य** :– वृक्क शरीर के मुख्य उत्सर्जन अंगों में से एक है ये संख्या में दो होते है जो पेट के पीछे मेरूदण्ड के दोनो ओर स्थित होती है। ये 12 थेरोसिक केशरूकाओं से 3 लम्बत् केशरूका के नीचे में स्थित होती है (नीचे से ऊपर 3) वृक्क उदर गुहा में केशरूका दण्ड के दोनो ओर स्थित रहते है। बाया वृक्क दाए वृक्क की अपेक्षा बड़ा तथा कुछ अंगों में स्थित होता है यह भूरे रंग तथा सेम के बीज के समान आकार की संरचना होती है इसका बाहरी भाग उभरा तथा भीतरी भाग अन्दर गोल होता है इसके चारों ओर बसा का मोटा आवरण इसे सुरक्षा प्रदान करता है। वृक्क के ऊपरी भाग में एक गोल वृक्क ग्रंथी होती है यह 10 से. मी. चौड़ी 3 से 4 से.मी. मोटी होती है।

**वृक्क की आन्तरिक संरचना :–**

प्रत्येक वृक्क (गुर्दा) संयोजी ऊतक के एक आवरण से बनी रहती है यदि वृक्क को खड़ा आकार दिया जाये तो दो भाग स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते है। पहला भाग कार्टेस्ट दूसरा भाग मेड्यूला कहलाता है। कार्टेस्ट से घिरी रहती है जो कुछ उठा हुआ मिनार जैसा देखा जाता है या दिखता है प्रत्येक अधिवृक्क में लगभग 10 से 12 मिनार होती है। प्रत्येक किड़नी में कई नेफ्रान्स से बनी है ये किडनी की कार्यक्षमता या कार्यात्मिक इकाई होती है प्रत्येक किडनी में 10 लाख नेफ्रान्स होते है।

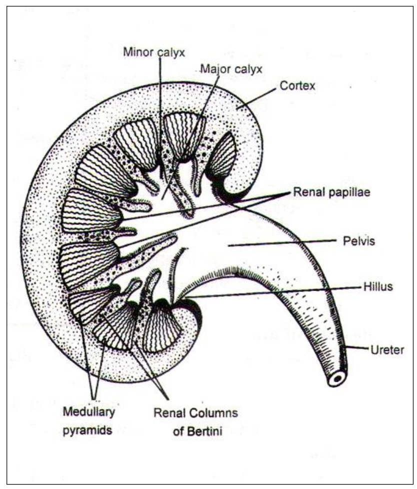


**नेफ्रान्स की आंतरिक संरचना :–**

प्रत्येक नेफ्रान्स में दो भाग होते है।

नेफ्रान्स
- मेल्पीजिअनवाड़ी
  - बोनमेन्स कप्सूल
  - ग्लोमेरूलस
- रीनलटिबुल
  - (i) समीपस्थ कु. उन्नित

**(1) मेल्पीजिअनबाड़ी :–**

यह अधिकतर किड़नी कारटेक्स भाग में स्थित होता है यह रक्त छानने का कार्य करता है। इसके दो भाग होते हैं :–

(i) **बोनमेन्सकेप्सूल** :— यह एक प्यालेनुमा रचना होती है यह केपेलरीज के गुच्छों से घिरा होता है।

(ii) **ग्लोमेंरूलस** :— यह केपेलरीज केप्सूल के गुच्छों के समान रचना होती है जो कि बोनमेन्स केप्सूल्स से घिरा रहता है।

(iii) **रीनलटिबुल** :— मानव रीनल या अधितल करीब 30 से.मी. लंबा होता है यह ग्लोमेसलर के ठीक बाद टिबुल का हिस्सा सकरा होता है इस हिस्से को गर्दन या Nake कहते है रीनलटिबुल के चार भाग होते है।

(i) समीपस्थ कुंडलित तलिका

(ii) हेनलेलूप।

(iii) इरस्थ कुण्डलित तलिका।

(iv) संगह तलिका।

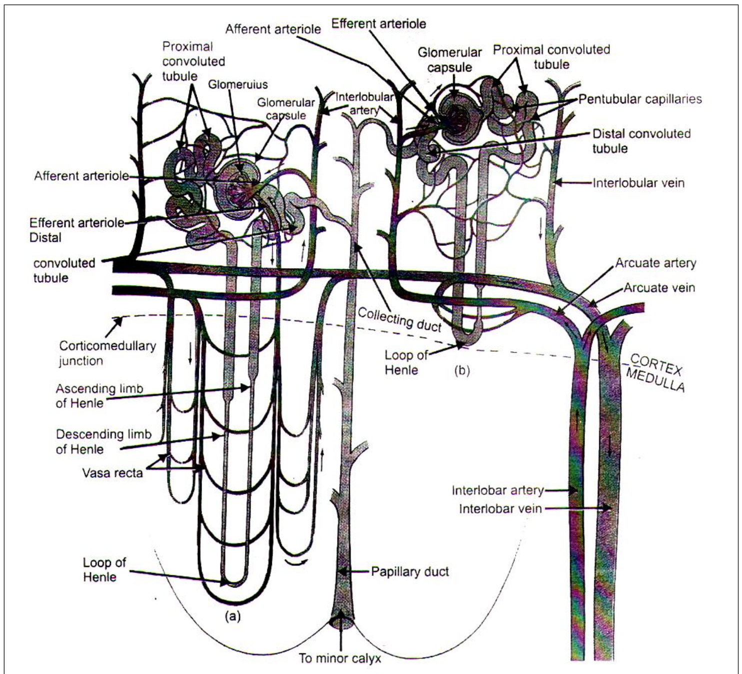


(a) Juxtamedullary nephron (b) Cortical nephron

**वृक्क के कार्य** :—

(1) किड़नी का मुख्य कार्य शरीर के अनुपयोगी पदार्थों को शरीर के बाहर निकालना तथा मुख्य प्रोटीन उपापचय के नाइड्रोजन एवं सल्फर युक्त अन्य पदार्थ उत्पन्न करना।

(2) यह शरीर से विषैले पदार्थों एवं औषधियों को बाहर निकालते है।

(3) ये सारे शरीर में पानी का संतुलन निश्चित बनाये रखने में सहायक होता है

(4) ये रक्त तथा ऊतको में रस आकर्षण दबाव बनायें रखती है।

**वृक्क तीन प्रक्रियाओं का प्रयोग करते है :–**

(1) छानन

(2) अवशोषण

(3) स्त्रावण

**मूत्र वाहिकायें या मूत्र वाहिनी** :– ये दो पतली नलिकायें होती है ये वृक्क को पेल्वेज तक पहुँचाती है इसकी लम्बाई 25 से 30 से.मी. होती है। मूत्र वाहिनियाँ अनेच्छिक पेशी संयोजी ऊतक या म्यूकस झिल्ली की बनी होती है इसके द्वारा मूत्राशय में मल धकेला जाता है।

**मूत्राशय** :– यह पेशीय थैला होता है जो मूत्र को एकत्र किये रहता है। मूत्राशय के आधार में मूत्र वाहिनियाँ प्रवेश करती है तथा मूत्र मार्ग निकालता है, जब मूत्राशय सिकुड़ता है तब इसकी दीवार की पेशी सिकड़ती है जो इस द्वार को बंद कर देती है। अतः मूत्र अब पुनः मूत्र वाहिनी में नहीं आ सकता मूत्र से भर जाने पर मूत्राशय सिकुडता है तथा जमा किया हुआ मूत्र बाहर निकल जाता है।

**मूत्र मार्ग** :– मूत्राशय से बाहर त्वचा तक पहुँचाने वाली नली का नाम मूत्र मार्ग है।

## रक्त संचरण अथवा परिवहन तंत्र

**रक्त (Blood) :-**

शरीर के भीतर जो एक लाल रंग का द्रव्य पदार्थ भरा हुआ है वह रक्त कहलाता है। रक्त शरीर की रक्त वाहनियों में बहने वाला द्रव्य है। इसे जीवन का रसर्या कहा जाता है। यह शरीर में वहन का माध्यम (Transport medium) है। यह सम्पूर्ण शरीर में निरन्तर भ्रमण करता है तथा अंग प्रत्यंग को पुष्टि प्रदान करता

रहता है तथा इसी के द्वारा शरीर के जीवित ऊतक वाह्य वातावरण से सम्पर्क स्थापित करते है। रक्त हृदय द्वारा फेफड़ों में फेंका जाता है, ताकि वहां से यह आक्सीजन ग्रहण कर सके, रक्त को हृदय पोषक पदार्थों को ग्रहण करने के लिए आतों में फेकता है। हृदय ही रक्त को शरीर के ऊतको में फेंकता है ताकि आक्सीजन व पोषक पदार्थ प्रदान किये जा सके।

अतः जब तक शरीर में इसका संचरण रहता है तभी तक प्राणी जीवित रहता है। इसका संचरण बंद होते ही मृत्यु हो जाती है।

**मानव शरीर में रक्त का विश्लेषण** :–

सामान्यतः मनुष्य शरीर में रक्त की मात्रा 5 से 6 लीटर होती है। एक अन्य मत के अनुसार मनुष्य शरीर का 20 वां भाग रक्त होता है वहीं पर इसे शरीर भार का $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{14}$ भाग तक रक्त माना जाता है।

**आयुर्वेद के मतानुसार** :– मानव शरीर में 8 अंजलि रक्त माना गया है यह मात्रा शरीर में भ्रमण करने वाले रक्त की है।।

**रक्त विश्लेषण** :–

रक्त का आपेक्षित गुरूत्व 1.055 होता है। मानव शरीर के भीतर इसका तापमान 100 डिग्री का.हा. रहता है। परन्तु रोग की हालत में इसका तापमान कम अथवा अधिक भी हो सकता है। इसका स्वाद कुछ नमकीन सा होता है। इसका कुछ भाग तरल व कुछ भाग गाढ़ा होता है।

**रक्त में मिश्रित पदर्थ** :–

रक्त निम्नलिखित पदार्थों के मिश्रण से बना है –

(1) प्लाज्मा (Plasma)

(2) रक्त कणिका (Blood Corpuscles)

**(1) प्लाज्मा :–**

यह हल्के पीले रंग की क्षारीय वस्तु है इसका आपेक्षित धनत्व 1.026 से 1. 029 तक होता है।

100.c.c. प्लाज्मा में निम्नलिखित पदार्थ पाये जाते है।

| पदार्थ | मात्रा (प्रतिशत में) |
|---|---|
| पानी | 91% |
| प्रोटीन | 6.5% |
| फाइब्रीनोजिन | 0.3% |
| एल्फा ग्लोत्युलिन | 0.46% |
| वीटा ग्लोत्युलिन | 0.86% |
| गामा ग्लोत्युलिन | 0.75% |
| एलव्युमिन | 4.00% |
| रस | 1.4% |
| लवण | 0.6% |

प्लाज्मा रक्त कणिकाओं को बहाकर इधर–उधर ले जाने का कार्य करता है तथा उन्हें नष्ट होने से बचाता है। यह रक्त को हानिकर प्रति–क्रियाओं से बचाता है। किसी संक्रामक रोग के उत्पन्न होने पर रक्त में इसकी संख्या स्वतः ही बढ़ जाती है। इसका फाइब्रीनोजिन रक्तस्त्राव के समय रक्त को जमाने का कार्य करता है। जिसके कारण उसका बहना रूक जाता है।

**(2) रक्त कणिकाऐं (Blood-corpuscles):-**

यह निम्न प्रकार की होती है :–

(1) लाल रक्त कण (R.B.C.)

(2) श्वेत रक्त कण (W.B.C.)

(3) रंगहीन प्लेटलेट्स (Blood Platelets)

**(1) लाल रक्त कण (R.B.C.) :-**

मानव शरीर में लाल रक्त कणिकाओं की संख्या औसतन लगभग 45 से 50 लाख तक होती है। यह आकार में छोटी तथा गोलाकार होती है इसका केन्द्रक भाग कुछ चिपका हुआ चपटा होता है तथा केन्द्रक नहीं पाया है। Microscope से देखने पर प्रत्येक RBC का कण फीके पीले रंग का दिखाई देता है परन्तु सामूहिक रूप से देखने पर यह लाल रंग के प्रतीत होते है। इसमें Hemoglobin नामक प्रोटीन पाया जाता है। जिसमें Globin प्रोटीन तथा Heamation नामक Iran Costuming pigments. होता है।

$$\text{Hcumalis} + \text{Globin} \Rightarrow \text{Hemoglobin}$$

**जीवन काल :–**

RBC का जीवन काल 80–120 दिन का होता है इसके बाद इसका विनाश Liver तथा Spleen में होता है। मूणावस्था में RBC का निर्माण Spleen में होता है। परन्तु वयस्क होने पर RBC का निर्माण Red bone morrow में होता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| RBC की संख्या | : | महिलाओं में | – 4.5m/mm$^{II}$ |
| | | पुरूषों में | – 4.5m/mm$^{III}$ |

**बनावट – (Structures) :-**

RBC में 60–70% जल तथा 30–40% Hemoglobin ठोस रूप में पाया जाता है।

**कार्य (Function) :-**

(1) RBC Ions का संतुलन करती है क्योंकि इसी से होकर विभिन्न प्रकार के Ions गुजरते है।

(2) शरीर में गैसों का आदान प्रदान भी RBC में उपस्थित Hemoglobin के द्वारा होता है।

**श्वेत रक्त कणिकाएँ (W.B.C) :-**

यह संख्या में RBC से कम परन्तु आकार से बड़ी होती है। यह विश्राम अवस्था में गोल होती है परन्तु गतिशील होने पर अपनी अमीवा गति के कारण अपने आकार में परिवर्तन कर लेते है। इन्हें ल्यूकोसाइट (Leukocyte) भी कहा जाता है। इनमें केन्द्रक होता है। यह शरीर में रक्त द्वारा लाये गई हानिकारक जीवाणुओं का भक्षण करती है। संक्रमण की अवस्था में इनकी संख्या 30,000 तक होती है। परन्तु इनका औसत 6000–8000 कण तक प्रति घन मिली मीटर रक्त में होता है।

**रचनात्मक विभाजन :–**

WBC को रचना या आकार के आधार पर दो भागों में बांटा जाता है –

(1) कणदार (Granulocye)

(2) कणरहित (A-Granulocyte)

**WBC के कार्य :–**

(1) WBC रक्त में उपस्थित हानिकारक जीवाणुओं को मार डालती है तथा उनका भक्षण कर जाती है।

(2) यह Neutrophils के द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों से शरीर की रक्षा करती है। बाहरी हानिकारक पदार्थों तथा जीवाणुओं का नाश WBC के द्वारा ही होता है।

(3) यह Antibodies के निर्माण में सहायता करती है।

(4) यह Body को immunity प्रदान करती है।

BLOOD PLATELETS : -

WBC तथा RBC के अतिरिक्त रक्त में कुछ छोटे–छोटे कण भी पाये जाते है। इसका आकार और प्रकार अनिश्चित होता है। ये Blood platelets कहलाते है। ये अत्यन्त सूक्ष्म चपटी गोल तथा रक्त में प्रचुर मात्रा में उपस्थित होती है। इन्हें Thrombus cites भी कहते हैं क्योंकि यह Thrombus बनने में मद्द करता है। Thrombus रक्त जमने के लिए आवश्यक है। इनका निर्माण Red bone marrow होता है। इसके Cytoplasm में कुछ छोटे–छोटे कण पाये जाते है। इनमें nucleus का आभाव होता है।

**संख्या :–**

Blood में Blood platelets की संख्या 2,50,000 तक होती है।

**कार्य (Function) :-**

(1) यह रक्त को जमाने में कार्य करता है।

(2) यह रक्त कोशिकाओं के छिद्रों तथा टूट–फूट की मरस्मत होती है।

(3) इसमें कुछ Antigens पदार्थ भी उपस्थित होते है। जो Antibody को कार्य करने के लिए उत्तेजना प्रदान करते है।

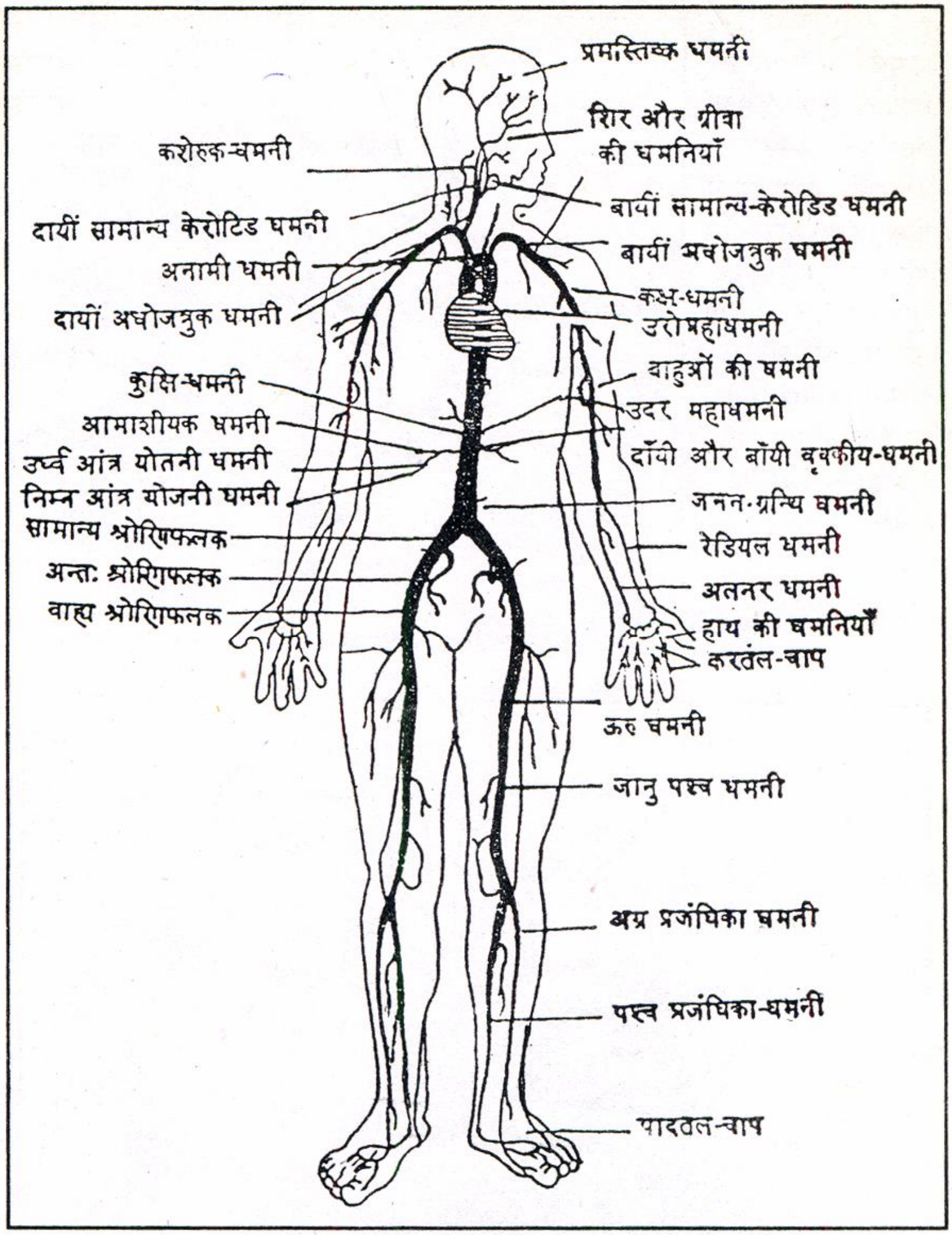

प्रमस्तिष्क धमनी
शिर और ग्रीवा की धमनियाँ
कशेरुक-धमनी
बायीं सामान्य-केरोडिड धमनी
दायीं सामान्य केरोटिड धमनी
बायीं अधोजत्रुक धमनी
अनामी धमनी
कक्ष-धमनी
दायीं अधोजत्रुक धमनी
उरोमहाधमनी
बाहुओं की धमनी
कुक्षि-धमनी
उदर महाधमनी
आमाशीयक धमनी
दाँयी और बाँयी वृक्कीय-धमनी
उर्ध्व आंत्र योतनी धमनी
निम्न आंत्र योजनी धमनी
जनन-ग्रन्थि धमनी
सामान्य श्रोणिफलक
रेडियल धमनी
अन्त: श्रोणिफलक
अलनर धमनी
वाह्य श्रोणिफलक
हाथ की धमनियाँ
करतल-चाप
ऊरु धमनी
जानु पश्च धमनी
अग्र प्रजंघिका धमनी
पश्च प्रजंघिका-धमनी
पादतल-चाप


(रक्त-संचरण तंत्र)

## रक्त के संगठन :–

| | | |
|---|---|---|
| जल 78 प्रतिशत<br>ठोस 22 प्रतिशत | प्रोटीन 18.5 प्रतिशत<br>ग्लूकोज 0.1 प्रतिशत<br>वसा 1.4 प्रतिशत | लवण 1.5 प्रतिशत<br>मल द्रव्य 0.5 प्रतिशत |

| घटक 100 मि.ली. में | रक्त (Whole Blood | प्रलसी Plasma | लसी Serum |
|---|---|---|---|
| हेमोग्लोबिन | 14-17 ग्राम | | |
| प्रोटीन रहित नाइट्रोजन (एन.पी.एन.) | 25-35 मि. ग्राम | | |
| प्रोटीन- | | | |
| एल्ब्यूमिन | 4.1 ग्राम | 4-5 ग्राम | |
| ग्लोब्यूलिन | 2.7 ग्राम | 2-3 ग्राम | |
| फाइब्रिनोजन | 0.27 ग्राम | .03 ग्राम | |
| ग्लूकोज | 65-90 मि.ग्रा. | | |
| कुल लाइपाइड | 360-820 मि.ग्रा. | | |
| लैक्टिक एसिड | 6-16 मि.ग्रा. | | |
| यूनिया | 19-33 मि.ग्रा. | | |
| यूरिक एसिड | 1-3 मि.ग्रा. | | |
| कुल फैट्टी ऐसिड | 100-500 मि.ग्रा. | 100-500 मि.ग्रा. | |
| क्रियेटिनिन | 1-2 मि.ग्रा. | | |
| कुल कोलेस्ट्रोल | 140-170 मि.ग्रा. | 150-250 मि.ग्रा. | 150-250 मि.ग्रा. |
| फ्री कोलेस्ट्रोल | -- | -- | 40-70 मि.ग्रा. |
| इस्ट्रीफाइड कोलेस्ट्रोल | -- | -- | 100-180 मि.ग्रा. |
| कैल्शियम | 9-11 मि.ग्रा. | 10 मि.ग्रा. | 9-11 मि.ग्रा. |
| फोस्फोरस | 2.5-4 मि.ग्रा. | 3 मि.ग्रा. | |
| सोडियम क्लोराइड | 450-520 मि.ग्रा. | 626 मि.ग्रा. | |
| क्लोराइड | 292 मि.ग्रा. | 380 मि.ग्रा. | 576-612 मि.ग्रा. |
| मैग्नीशियम | 3 मि.ग्रा. | 3 मि.ग्रा. | |
| पोटेशियम | 202 मि.ग्रा. | 20 मि.ग्रा. | 14-24 मि.ग्रा. |
| सोडियम | 208 मि.ग्रा. | 345 मि.ग्रा. | 310-350 मि.ग्रा. |

प्रलसी व लसी का संगठन लगभग एक जैसा होता है। परन्तु लसी (Serum) में फाईब्रिनोजन नामक प्रोटीन नहीं होती क्योंकि रक्त के जमने में यह प्रोटीन व्यय हो जाती है।

**रक्त के घटक :–**

- रक्त (Blood)
  - कोशा (Cells)
    - लाल रक्त कण (Erythrocyte)
    - श्वेत रक्त कण (Leucocyte)
    - रक्त चक्रिकायें (Blood platelets)
  - प्रलसी (Plasma)
    - जल (Water)
    - गैसे (Gases)
      - ऑक्सीजन
      - कार्बन डाई ऑक्साइड
      - नाइट्रोजन
    - भोज्य पदार्थ (Foods)
      - कार्बोहाइड्रेट (ग्लूकोज)
      - फैट्स (फैट्टी ऐसिड्स)
      - प्रोटीन्स (अमाइनोएसिड्स)
    - रक्त प्रोटीन्स (Blood Proteins)
      - सीरम एल्ब्यूमिन
      - सीरम ग्लोब्यूलिन
      - फाइब्रिनोजेन
    - लवण (Salts)
      - सोडियम, कैल्सियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम के क्लोराइड्स, बाईकार्बोनेट्स, सल्फेट्स, फास्फेट्स
    - रक्षक पदार्थ (Protective Substances)
      - एन्टीटोक्सीन (Antitoxin)
      - ओप्सोनिन्स (Opsonins)
      - एग्लूटिनिन (Agglutinin)
      - बैक्टीरियोलाइसिन्स (Bacteriolysins)
    - आटोकायड्स (Autocoids) (प्राणी विहीन ग्रन्थियों के स्राव)
    - मल द्रव्य (Waste Products)
      - यूरिया
      - यूरिक एसिड
      - क्रियेटीनिन
      - जैनथिन (Xanthine)
      - हाईपोजैन्थीन (Hypoxanthine)
      - ग्वानिन (Gaunine)
      - एडीनिन (Adenine)
      - कार्नीन (Carnine)

**रक्त के कार्य :–**

(1) आहार–नलिका से भोजन तत्वों को शोषित कर उन्हें शरीर के सब अंगों में पहुँचाना और इस प्रकार उनकी भोजन संबंधी आवश्यता की पूर्ति करना।

(2) फेफड़ो की वायु से आक्सीजन लेकर उसे शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाना। आक्सीकृत किए हुए अंग ही शरीर को शक्ति प्रदान करते है।

(3) शरीर के प्रत्येक भाग से कार्वनडाई आक्साइड यूरिया, यूरिक एसिड तथा गंदा पानी तथा दूषित पदार्थों, जो अपने साथ लेकर उन अंगों तक पहुँचाना, जो इन दूषित प्रदार्थों को बाहर निकालने का कार्य करते है।

(4) शरीरस्थ निःस्त्रोत ग्रंन्थियों द्वारा होने वाले अन्तः–स्त्रावों (Harmon's) को अपने साथ लेकर शरीर से विभिन्न भागों में पहुँचाना।

(5) सम्पूर्ण शरीर के तापमान को सम बनाये रखती है।

(6) वाह्य जीवाणुओं के आक्रमण से शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने हेतु श्वेत कणिकाओं को शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाते रहना।

(7) विभिन्न तरल पदार्थों का विनिमय करना।

**आयुर्वेद के अनुसार रक्त के कार्य :–**

(1) रक्त वर्ण को निर्मल करता है।

(2) मांस का पोषण करता है।

(3) रक्त शरीर के जीवन का कारण है।

(4) शरीर को बल वर्ण व आयु से युक्त करता है।

(5) शरीर को स्पर्श का ज्ञान कराता हैं

(6) यह धातुओं का पूरण करता है।

**रक्त–संचरण में सहायक प्रमुख अवयव :–**

(1) हृदय

(2) धमनियां

(3) शिराऐं

(4) कोशिकाऐं तथा लसिकाऐं

(5) फुक्फुस

**(1) हृदय :–**

Heart शरीर का अत्यन्त विशिष्ट अंग है। तथा रक्त संचरण क्रिया का यह सबसे मुख्य अंग है। यह नाशपाती के आकार का मांसपेशियों की एक थैली जैसा होता है। इसका निर्माण धारीदार Striped एवं अनैच्छिक पेशी ऊतकों द्वारा होता है। वक्षोस्थि से कुछ पीछे की ओर तथा वांये हटकर दोनो फेफड़ों के बीच स्थित है। यह पांचवी, छवी, सातवी तथा आठवी पृष्ठ देशीय कशेरुका के पीछे रहता है।

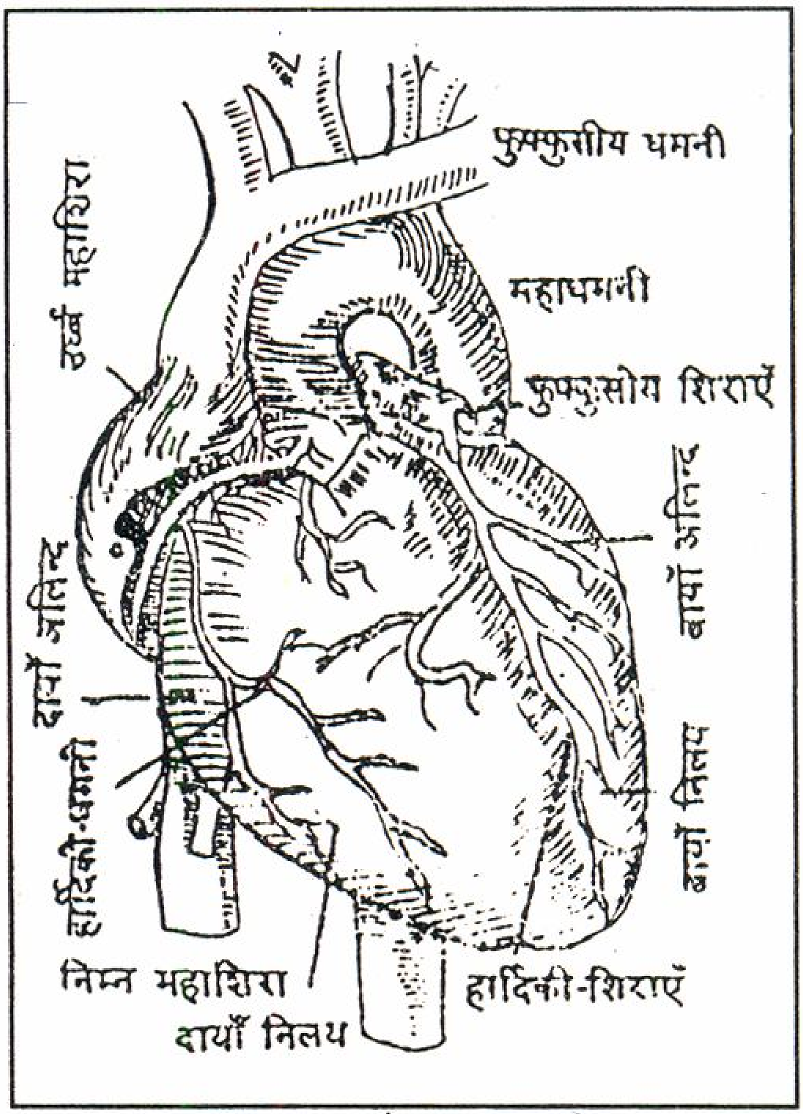


(हृदय–वाह्य अभिमुख)

हृदय गुहा एक क्षैतिज परदे द्वारा दो भागों में बट जाती है। ऊपरी भाग को आलिन्द तथा निम्न भाग को निलय कहा जाता है। आलिन्द और निलय एक खड़े पर्दे द्वारा दो–दो भागों में बट जाता है। वाम आलिन्द, दक्षिण आलिन्द वाम निलय, दक्षिण निलय हृदय में से तीन प्रकार के Sound सुनाई पड़ते है।

| | | |
|---|---|---|
| SA Nod | - | LUP |
| AV Nod | - | DUP |
| | | Mur-Mur |

**आकार व वजन :–**

| | |
|---|---|
| इसकी लम्बाई | –13 से.मी. |
| चौड़ाई | – 9 से.मी. |
| मोटाई | – 16 से.मी. |

हृदय का वजन 250 से 350 ग्राम होता है तथा यह पुरूषो की तुलना में स्त्री का छोटा होता है।

**हृदय के कार्य (Functions)**

Heart एक अनौच्छिक पेशी है, यह निरन्तर सिकुड़ता और फैलता रहता है। Heart में होने वाली यह क्रिया जीवन का प्रमाण है। Heart के कार्य की तुलना एक धोकनी से की जा सकती है। समस्त शरीर से उच्च्व तथा निम्न महाशिराओं द्वारा लाये गये गन्दे रक्त को सफाई के लिए फेफड़ों में भेजना तथा फेफड़ों से साफ रक्त को प्राप्त करके समस्त शरीर में भेजना Heart का ही काम है। आलिन्दों में रक्त भर जाने पर आलिन्द की पेशियाँ संकुचित हो जाती है। और संकुचन के दवाव के कारण उनमे भरा रक्त नीचे की ओर बड़ता है अब आलिन्दो और निलयो के बीच के कपाट खुल जाते है। और रक्त आलिन्द और निलयों में पहुंचने लगता है। रुधिर के निकल जाने पर आलिदों में पुनः प्रसार होता है। तथा उसमें रुधिर पहुंचाने वाली वाहिकाओं द्वारा रुधिर पुनः भर दिया जाता है। इधर नलिकाओं में संतुलन होता है। और उसमें एकत्र रुधिर उनसे सम्बंधित रुधिर वाहिकाओं में चला जाता है।

**धमनियाँ :–**

ये रक्त नलिकाऐं लम्बी मांसपेशियों द्वारा निर्मित है। ये हृदय से आरम्भ होकर कोशिकाओं में समाप्त होती है। इनका संचालन अनैच्छिक मांसपेशियों द्वारा होता है। ये आवश्यकतानुसार फैलती तथा सिकुड़ती रहती है। इसके संकुचन से रक्त परिभ्रमण में सरलता आती है। फुक्फुसी धमनी तथा रक्त धमनी के अतिरिक्त शेष सभी धमनियाँ शुद्ध रक्त का वहन करती है। इनकी दीवारें मोटी तथा लचीली होती है। छोटी धमनियों को धमनिका कहते हैं।

**शिराऐ :–**

ये नलिकाऐं पतली होती है। इनकी दीवारें पतली तथा कमजोर होती है। जो झिल्ली की बनी होती है। इनकी दीवारों में स्थान–स्थान पर प्यालियों जैसे चन्द्र कपाट बने रहते है। इनकी सहायता से रक्त उछल कर नीचे से ऊपर की ओर जाता है। इन पर मांस का आवरण नहीं रहता। अतः ये कट भी जाती है। जब ये ऊतको में पहुंचती है तब बहुत महीन हो जाती है। तथा इनकी दीवारे भी पतली पड़ जाती है। 'फुफ्फुसी शिरा' एवं 'वृक्क शिरा के अतिरिक्त अन्य सभी धमनियों में अशुद्ध रक्त बहता है। ये सब अशुद्ध रक्त को हृदय में पहुंचाने का कार्य करती है।

**कोशिकाऐं तथा लसिकाऐं :–**

अत्यन्त महीन शिराओं का जो एक कोशिका वाली दीवार में भी प्रतिष्ट हो जाये, कोशिका कहा जाता है। उन्हें धमानियों की शुद्ध शाखाऐं भी कहा जा सकता है। ये शरीर के प्रत्येक कोष को शुद्ध रक्त पहुचाती है तथा अशुद्ध रक्त को हृदय तक पहुंचाती है।

**फुक्फुस (Lungs)**

फफड़े संख्या में दो होती है ये वक्ष गुहर में हृत्पिण्ड के दोनो ओर रहती है। जिन्हें क्रमशः दांया फेफड़ा तथा वांया फेफड़ा कहा जाता है। इनका रंग धुमैला होता है ये स्पंज की भांति कोमल, छेदभरे फैलने तथा सिकुड़ने वाले तथा हलके होते है।

**योग का हृदय व रक्त वह संस्थान पर प्रभाव :–**

1. शवासन दंडासन व योग निद्रा के नियमित अभ्यास से मानसिक तनाव कम होता है, जिसके कारण सिम्पेथेर्टिक नाड़ियों की क्रियाशीलता कम हो जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप रक्त दाव कम होता है।

2. शीर्षासन, सर्वागासन आदि के द्वारा रक्त का प्रवाह सिर की ओर अधिक होता है जिससे मस्तिष्क को अधिक रक्त मिलता है तथा मानसिक उत्साह में वृद्धि होती है।

3. सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन, सुखासन आदि ध्यानात्मक अभ्यासों से मानसिक तनाव घटता है। मस्तिष्क स्थित नाड़ी केन्द्र शान्त होते है। इससे रक्तदाव कम होता है।

4. पवनमुक्तासन वज्रासन शशांकासन के साथ शीतली, शीतकारी व भ्रामरी प्राणायम का नियमित अभ्यास उच्च रक्तचाव को कम करता है।

5. वज्रासन के साथ नाड़ी शोधन प्राणायाम और भस्त्रिका निम्न रक्तचाप को बड़ाता है।

6. प्राणायाम के द्वारा अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियां अधिक क्रियाशील होती है।

7. प्राणायाम के द्वारा फेफड़ों में रक्त प्रवाह तीव्र होता है।

8. प्राणायाम द्वारा अधिक वायु रक्त के सम्पर्क में आने से रक्त भली प्रकार शुद्ध होता है।

9. योगिक अभ्यास विभिन्न अंगों में जमा रक्त को हटाते है। तथा उन अंगों में रक्त का अच्छा प्रवाह करते है। जिससे वह अंग स्वस्थ्य होते है।

10. ध्यान की प्रक्रिया द्वारा शारीरिक व मानसिक थकान दूर होती है। वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि ध्यान की अवस्था में :–

अ. हृदय की गति कम होती है।

ब. श्वास की गति कम हो जाती है।

स. धमनीय आक्सीजन व कार्वनाडाई आक्साइड की उत्पत्ति कम हो जाती है।

11. नाड़ी शोधन प्राणायाम, शीतली प्राणायाम, शीर्सासन सर्वांगासन आदि क्रियाऐं अनेक रक्त विकारों में लाभ करती है।

**परिभ्रमण संस्थान के सामान्य रोग एवं योगोपचार :—**

सामान्यतः मनुष्य के जीवन में कई बीमारियों का प्रादुर्भाव रक्त से होता है तथा रक्त अधिकांश रोगों की जड़ बनता है। अतः रक्त से संचरण और रक्त से संबंधित बीमारियों की सूची में बहुत सारी बीमारियाँ आती है। परन्तु आज के समय में अधिकाश व्यक्तियों में होने वाली बीमारियों में मुख्यतः है :—

**रक्तचाप :—**

शरीर में रक्त निरन्तर प्रवाहित होना जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। रक्त प्रवाह कुछ मिनटो के लिए भी रूक जाये तो मृत्यु ही उसका परिणाम है। रक्त को प्रवाहित करने के लिऐ हृदय का पंप अथक काम करता रहता है। इस पंप से अर्थात् बाये शेपक कोष्ट के संकोचन से दबाव रक्त पर डाल दिया जाता है। वह धमनियों की दीवार पर नापा जा सकता है। उसी को रक्त चाप कहते है। इसकी दो अवस्थाएं होती है :—

1. उच्च रक्तचाप
2. निम्न रक्त चाप

सामान्यतः रक्त चाप इस स्वाभाविक मात्रा से कम या अधिक हो तो वह बीमारी का लक्षण बन जाता है। कम रक्त चाप हृदय की कमजोरी का लक्षण माना जाता है। उच्च रक्त चाप उससे अधिक खतरनाक होता है।

**उच्च रक्तचाप**

उच्च रक्त चाप प्राथमिक या अनुषंगिक ऐसा दो प्रकार का होता है। प्राथमिक को प्रायमरी या इंडिपोपथिक या एसेन्शियल हायपर टेन्शन कहते है। उसका कोई कारण शरीर में दिखाई नहीं देता यद्यपि अनुकंपी नाड़ी संस्थान के कार्य की अधिकता इसके साथ अक्सर दिखाई देती है। आनुषंगिक उच्च रक्त चाप

मूत्रपिंड या मस्तिष्क जैसे अन्य किसी अंग की खराबी के परिणामस्वरूप निर्माण होता है। इसके रोगियों की संख्या प्राथमिक उच्च रक्तचाप से पीड़ित लोगों की अपेक्षा बहुत कम होती है।

**लक्षण :–**

1. मोटे व्यक्तियों में इसके होने की संभावना अधिक होती है।
2. सिर में भारीपन
3. चक्कर आना
4. सिर में दर्द
5. थकान
6. जी मचलाना
7. नीद न आना, धवराहट का होना

**उपचार :–**

इस प्रकार के रोगियों का विभिन्न प्रकार की उपचार प्रणालियाँ है जिसमें कि अलग–अलग प्रकार से इसका उपचार संभव है तथा जिनके माध्यम से इनका उपचार किया जाता है विभिन्न उपचार विधियाँ :–

**1. योगोपचार :–**

योग के माध्यम से उच्च रक्तचाप के मरीजों को ठीक किया जा सकता है जिसमें उन्हे व्यायाम के साथ–साथ अन्य उपाय बतलाये जाते है तथा यह उनके स्तर पर निर्भर करता है। योगोपचार में उच्च रक्त–चाप के मरीजों को सामान्यतः टहलने की समझाइश दी जाती है तथा आधारभूत योग व्यायाम क्रम उनके लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध होता है। श्वासन की स्थित में शिथलीकरण तथा किसी भी ध्यानात्मक आसन बैठकर वाहय कुम्भक, पूरक रेचक तथा ध्यान का अभ्यास उच्च रक्त चाप के रोगी को प्रतिदिन करना चाहिए।

**2. प्राकृतिक चिकित्सा :–**

प्राकृतिक चिकित्सा में मोटापा वाले व्यक्तियों को उपवास परिमित भोजन रसाहार आदि करना चाहिए।

**3. आहार :–**

भोजन में नमक की मात्रा कम करने से बहुत लाभ होता है। सब्जियां, सलाद तथा फल इनका आहार पर्याप्त मात्रा में उपयोग करना चाहिए। घी, मक्खन, तेल आदि का आहार में कमी तथा अनसेचूरेटेड फ्रेटी असिट्स बसा का सेवन उचित मात्रा में करना चाहिए जिसके लिए सूरजमुखी, ककड़ी तथा सोयाबीन के तेल का उपयोग करना चाहिए।

# II - लसीका संस्थान

लसिका शरीर में प्रवाहित होने वाला एक तरल पदार्थ है। रक्त जब हृदय से निकलकर धमनियों से बहते हुए परिवाहिनियों तक पहुंचता है। तब परिवाहिनियों के आवरण अत्यन्त पतले होने के कारण रक्त का तरल पदार्थ परिवाहिनियों से बाहर आकार कोषाणु एवं तंतुओ को प्राणवायु तथा पोषक तत्व पहुंचाकर उनसे कर्ब वायु तथा वाष्प ले लेता है तत्पश्चात् उसमें से कुछ तरल पदार्थ वापस परिवाहिनियों में चला जाता है। कुछ अन्य मार्ग से रसायनियों में से बहने लगता है। यही लसीका है लसीका रक्त से अधिक तरल होता है, वह रंगहीन, पारदर्शी एवं क्षारयुक्त होता है। उसमें 95 प्रतिशत पानी तथा 5 प्रतिशत ठोस पदार्थ होते है। ठोस पदार्थो में मुख्य रूप से मांसतत्व एवं वसा होता है। रक्त के समान लसीका में भी जमने की प्रवृत्ति होती है। लसीका में लसीकाणु होते है। जो आगे चलकर श्वेतकण बन जाते है। अनेक सूक्ष्म रसायनियाँ मिलकर बड़ी रसायनियाँ बनती है। इनसे फिर और बड़ी रसायनियाँ बनती है। शिराओं के समान इनमें भी परदे होते है। जिनके खुलने और बंद होने से लसीका का हृदय की ओर बड़ाया जाता है। सभी रसायनियाँ मिलकर अंत में दो मुख्य रस वाहिका बनती है।

**1. वक्षरस वाहिका :–**

इसमें पैर, उदर, वक्ष वायाँ हाथ, गर्दन और सिर का वाया भाग इनसे लासिका एकत्रित होता है।

**2. दक्षिण रसवाहिका :–**

इसमें दाहिना हाथ गर्दन और सिर से दाहिना हिस्से से लसीका को एकत्रित किया जाता है।

# III- श्वसन संस्थान

**श्वसन :–**

श्वसन का अभिप्राय शरीर में होने वाली उन सभी क्रियाओं से है जिनके द्वारा शरीर प्राण वायु को ग्रहण करता है तथा कार्बनडाईआक्साईड को छोड़ता है।

श्वसन क्रिया को दो भागों में बांटा जाता है :–

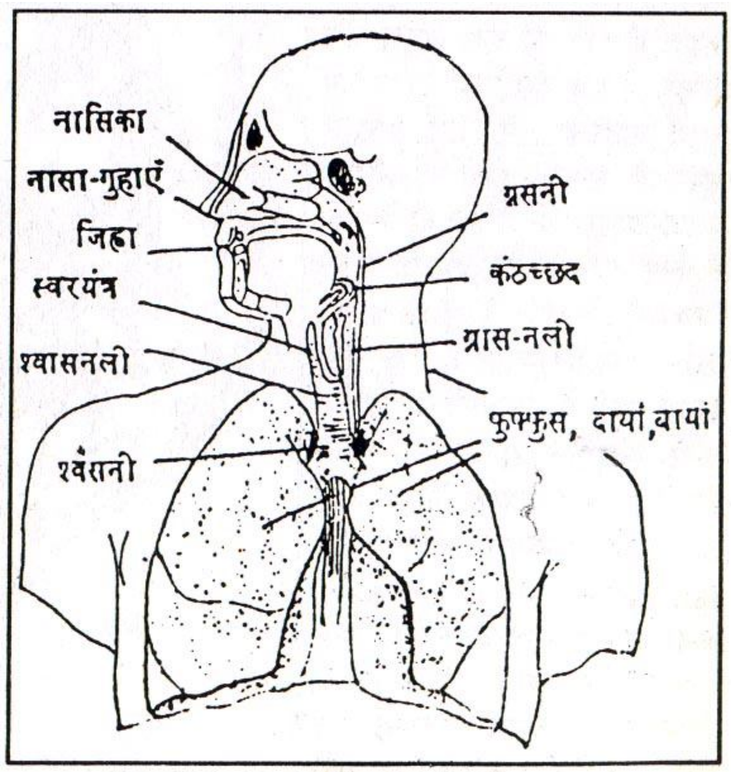


(श्वसन तन्त्र)

1. वाह श्वसन
2. अन्तः श्वसन

**1. वाह श्वसन :–**

इसमें रक्त तथा बाहरी माध्यम अर्थात् वायु के मध्म गैसो का आदान प्रदान होता है। यह कार्य फेफड़ों में होता है।

**2. अन्तः श्वसन :–**

इसमें धातु कोषों तथा रक्त के मध्य गैसों का आदान प्रदान होता है। यह कार्य धातुओं से होता है।

**श्वसन क्रिया के मुख्य अवयव :–**

श्वसन क्रिया में शरीर के निम्नलिखित अवयव मुख्य रूप से भाग लेते है।

1. नाक (नाक के नथुने)
2. कण्ड या गलकक्ष
3. श्वर यन्त्र
4. वायुनली
5. श्वास नली
6. फेफड़े

**सहायक अंग :–**

1. वायुकोषायें
2. वक्षोदर मध्यस्थ पेशी
3. उदर की मांसपेशियाँ
4. अन्तर्पर्शुकीय मांसपेशियाँ
5. वक्षाभित्ति
6. श्वसन पेशियाँ

**श्वसन क्रिया के मुख्य अंग :–**

**1. नाक**

नाक एक गहर के समान होती है। इसमें भीतर तथा बाहर की ओर दो द्वार होते है इन दोनों रन्ध्रो के मध्य एक दीवार सी होती है जिसे नासिकास्थि पर्दा कहा जाता है। यह दीवार आस्थि तथा उपास्थि के संयोग से निर्मित है। इस दीवार के दोनों ओर नासा गहर होते हैं तथा इसी के मध्य में ओर्शत्तिका नामक दो धुमावदार हड्डियां है। सम्पूर्ण नासा गद्र पर श्लैष्मिक झिल्ली चड़ी होती है। तथा प्रत्येक गछर की बाहरी दीवार ऊपरी कपोलास्थि के छिद्र से मिली रहती है। जिसे उर्ध्व

हनुकोटर कहा जाता है। ऊपरी भाग में जहां, नाक के पिछले दोनो छिद्र खुलते है मुंह का पिछला भाग अर्थात् गलकोष रहता है। पिछले नासाछिद्रो को पश्चिमी द्वार कहते है।

**2. कण्ठ या गलकक्ष :–**

यह गहार मुख्य तथा नासिका के पृष्ठभाग को बनाता है तथा उससे एकदम मिला रहता है। इसके सामने वाले ऊपरी भाग में दोनो नासा गदर, पृष्ठभाग में दोनो कण्ठ कर्ण नलियां मध्य में तथा सामने की ओर मुख तथा निम्न भाग में सामने की ओर वामुनली तथा पीछे की ओर कण्ठ नली रहती है।

गलकक्ष के ऊपरी भाग को नासा स्वर यंत्र मध्य भाग को वाकगलकक्ष तथा निम्न भाग का स्वर यंत्र संबंधी गलकक्ष कहा जाता है।

**3. स्वरयंत्र :–**

यह जीभ के पिछले भाग अर्थात् जहां पर गलकोष की समाप्ति होती है। वहां से यह आरम्भ होता है। इसमें अनेक अस्थियां होती है जैसे :–

**1. चुल्लिका उपास्थ :–**

यह एक चोकोर उपास्थि है। यह एक–एक दोनो ओर तथा नौंक के अग्र भाग में रहती है। यह चुल्लिका कोष का निर्माण करती है तथा इनके भीतर स्वर रज्जू होती है।

**2. मुद्रा उपास्थि :–**

यह चुल्लिका उपास्थि के नीचे रहती है यह एक नगदार अंगूठी जैसी होती है।

3. मुद्रा उपास्थि के ऊपरी किनारे पर चम्मच के आकार की एक–एक उपास्थि दोनों ओर रहती है।

**4. स्वर यन्त्र :–**

यह यन्त्र के पिछले भाग में रहती है तथा आकार में पत्ती की भांति होती है। इसे जीभ की जड़ भी कहा जाता है।

**4. श्वासनली :–**

यह नली मुद्रा उपास्थि के निम्न भाग से उत्पन्न होती है। यह लगभग 4½ इंच लम्बी तथा भीतर से खोलती होती है यह गले के नीचे वक्ष गुहर में पहुंचकर दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है, इन दोनों को वायुनली कहते है। इसकी एक शाखा दाये फेफड़े में तथा दूसरी वांये फेफड़े में चली जाती है। ये दोनो शाखाएं सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती हुई असंख्य शाखा प्रशाखाओं में बंटकर फेफड़ों में फैल जाती है। उन प्रशाखाओं का श्वासोपनाली कहा जाता है। प्रत्येक श्वास नली के किनारों पर छोटे–छोटे अंगूर के गुच्छे की भांति कितने ही कोष अथवा थैलियां होती है जिन्हें फुक्फुस कोष गुच्छ कहा जाता है।

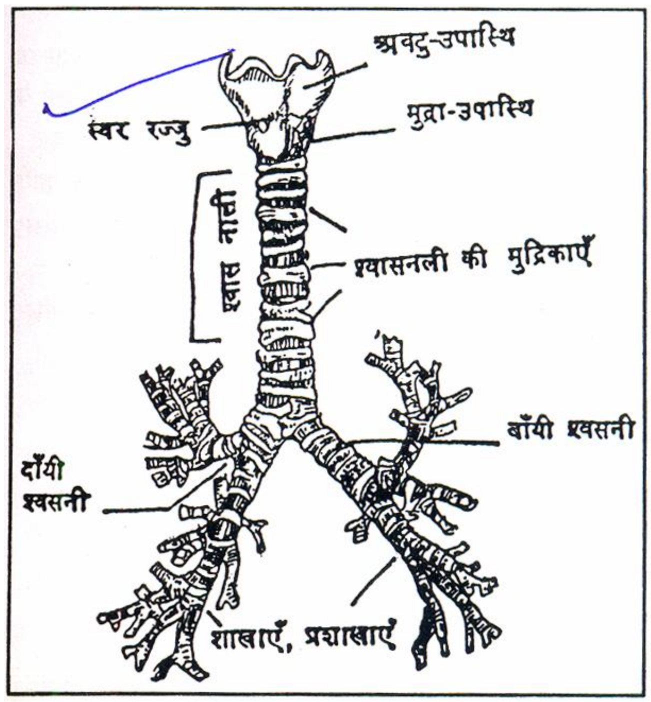

(श्वास-नली एवं श्वसनी)

**5. वक्ष गहर (Thorax)**

यह छाती के भीतर का गहर है, जो दो भागों में विभक्त रहता है। क्षत्पिण्ड तथा फेफड़े इसी में रहते है। प्रत्येक फेफड़े पर एक अत्यन्त पतली परत चड़ी रहती है, जिसे फुक्फुसावरण कहा जाता है।

**6. फुक्फुस (Lungs)**

फफड़े संख्या में दो होती है ये वक्ष गुहर में हृत्पिण्ड के दोनो ओर रहती है। जिन्हें क्रमशः दांया फेफड़ा तथा वांया फेफड़ा कहा जाता है।

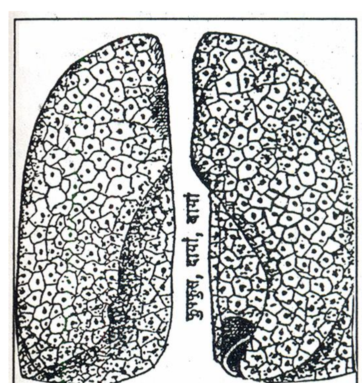

(दाँये-बाँये फुफ्फुस अर्थात् फेफड़े)

इनका रंग धुमैला होता है ये स्पंज की भांति कोमल, छेदभरे फैलने तथा सिकुड़ने वाले तथा हलके होते है।

**श्वसन क्रिया पर योग व्यायामों का प्रभाव** :–

नित्य श्वसन में हम प्रत्येक वार अपने फैफड़े पूरी तरह वायु से भरते नहीं है और रिक्त भी नहीं करते। जो लोग कोई भी व्यायाम नहीं करते उनके फेफड़ें कभी पूरी तरह फैलते और सिकुड़ते नहीं इसमें फेफड़ों की मासपेशियाँ धीरे, धीरे कमजोर होकर आसानी से रोगे के शिकार हो जाते है।

अतः इस स्थिति से बचने के लिए योगाभ्यासो का नियमित अभ्यास किया जाना चाहिए।

**आसन जैसे** :–

मयूरासन, चक्रासन, हलासन, शलभासन उन्तान मंडूकासन आदि इन आसनों में उदर गुहा तथा वक्ष गुहा पर दवाव या तनाव आनेसे श्वसन की मासपेशियां अधिक सक्रिय तथा कार्यक्षम होती है।

**कुछ अन्य योगाम्यास** :–

उड़ियान वन्ध, वाह कुम्मक, नौलि तथा कपालभाँति से योगव्यायाम भी श्वसन प्रणाली को बहुत लाभ पहुँचाते है।

**प्राणायाम** :–

प्राणायाम के अभ्यास का प्रभाव श्वसन का निंयत्रण करने वाली नाड़ी केन्द्रो पर होकर उनमें संतुलन बनाता है।

**षटकर्म** –

योगाम्यास के समय षटकर्म की क्रियाए करने से श्वसन नलिकाओं की सफाई होती है। जिससे कि इनके अधिक क्रियाशील बनाता है।

**षटकर्म जैसे** :–

1. जलनोति

2. सूत्रनेति
3. दण्ड धौति
4. वस्त्र धौति आदि

**श्वसन संस्थान के सामान्य रोग एवं उपचार :–**

**सर्दी–जुकाम**

सर्दी, गर्मी तथा बारिश के मौसम के आरंभ में, मौसम बदलने के समय सर्दी, जुकाम की शिकायत कई लोगों को होती है, परन्तु आमतौर पर वह दो–तीन दिन में कुछ उपाय किये बिना भी दूर हो जाती है, परन्तु कुछ लोग बार–बार या लगातार कई दिनों तक उस पीड़ा का अनुभव करते हैं। दवाइयाँ लेने पर तत्कालिन उपाय होता है और फिर तकलीफ का उद्भव होता ही रहता है। ऐसी स्थिति में यौगिक उपाय करना उपुयक्त होता है।

लगातार या बार–बार होने वाले सर्दी–जुकाम का कारण या तो कोई रोगाणु, जैसे व्हायरस या किसी पदार्थ की असहनीयता, अर्थात् एलर्जी, एन दो में से एक हो सकता है। एलर्जी में नाम की अन्तरस्त्वचा कुछ पदार्थो का स्पर्श सहन नहीं कर सकती, जैसे पुताई के रंग, चूना, चमड़ा धूलिकण, कोई रासायनिक सम्मिश्रण, या फूलों के पराग कण। इनके कण जब हवा के साथ नाक के अंदर की कोमल त्वचा पर आकर चिपकते हैं तो तत्काल त्वचना में सूजन आना, हिस्टामिन जैसे विषैल पदार्थो का रक्त में निर्माण होना, इओसीनोफिल, जो रक्त में उपस्थित कीटाणुसंहारक श्वेत कणों का एक प्रकार है, उनकी संख्या एकदम बढ़ जाना, ऐसे परिणाम होते हैं। इनको 'ऐलर्जिकरी अक्शन' कहते हैं। इनके परिणामस्वरूप सर्दी, जुकाम के लक्षण निर्माण होते हैं। उनके दो प्रकार कहे जाते हैं। एक को कहते हैं सायनसाइटीज और दूसरे का नाम है ह्राइनाइटीज।

मनुष्य की खोपड़ी में नाक के आसपास अनेक गुहाएँ या खाली जगह होती हैं। उनको 'सायनस' कहते हैं। इन पर भी अंतरस्त्वचा का आवरण होता है जो नाक के अंदर की कोमल त्वचा से लगा हुआ ही रहता है। सायनसेस की गुहाएँ छिद्रों के द्वारा नाक से संबंधित या जुड़ी हुयी रहती हैं। भौहों के ऊपर, आँखों के नीचे, नाक

के दोनों बाजू में तथा पीछे की ओर गले के ऊपर, ऐसी विभिन्न स्थानों में ये गुहायें होती हैं। इनके दो महत्व के कार्य हैं। एक तो इनसे सिर का भार कम हो जाता है और दूसरा, इन गुहाओं के कारण मनुष्य की बोलने की आवाज अधिक अच्छी निकलती है। जब इनकी कोमल त्वचा पर रोगाणुओं की क्रिया से सूजन आती है तब सायनसाइटीज से पीड़ा होने लगती है। उसमें प्रभावित सायनस में भारीपन लगने लगता है, सिर में दर्द होता है बुखार आ सकता है और नाक बंद होने की या बनहे की शिकायत रहती है। इसको तीव्र सायनसाइटीस कहते हैं। उसका इलाज दवाइयाँ लेकर करना चाहिये। पुराने सायनसाइटीस में दर्द अधिक नहीं होता परन्तु नाक बंद रहती है और नाक से दुर्गंध युक्त बहाव आता है।

ह्राइनाइटीस या 'हे फीवर' भी नाक से संबंधित रोग है। उसका मुख्य कारण होता है एलर्जी, अर्थात् असहनीयता। उसमें छीकें बहुत आती हैं और नाक बहती रहती है। आँखें तथा नाक लाल होकर उसमें खुजली सी रहती है।

उपाय– सर्दी, जुकाम, सायनसाइटीस तथा ह्राइनाइटीस ये रोग यदि पुराने हो जायें और दवाइयों से मात्र तात्कालिक ही लाभ हो रहा हो, तो यौगिक उपयोग में मुख्य रूप से दिन में दो बार जलनेति या सूत्रनेति तथा दिन में एक बार आधारभूत योग व्यायाम क्रम ये उपाय हें। प्राकृतिक चिकित्सा में रात में सोने के पूर्व एक बाल्टी में गरम पानी लेकर उसमें दोनों पैर पिंडलियों तक डुबोकर पन्द्रह मिनट रखने से नाक बंद होना तथा बहना कम होता है। इसको पैरों का गरम नहान कहते हैं।

**दमा :–**

दमा एक ऐसा रोग है जो प्रायः जीवनभर रोगी का साथ नहीं छोड़ता। उसमें श्वास वाहनियों की लोच कम हो जाती है, उनके आवरण कड़े हो जाते हैं, श्लेष्मत पदार्थ अधिक पैदा होकर श्वास मार्ग में जमा होता रहता है तथा श्वसन मार्ग को अवरुद्ध करता है। इससे श्वास छोड़ते समय अधिक कष्ट होते हैं। श्लेष्मत पदार्थ को बाहर निकालने के लिये खाँसी आती रहती है तथा प्राणवायु की कमी से रोगी को अत्यन्त कष्ट होते हैं। दमा के प्रमुख कारण होते हैं अनुवांशिकता, असहनीयता

अर्थात् एलर्जी, मनोकायिक असंतुलन तथा हृदय के कार्य में बाधा। हृदय के दोनों क्षेपक कोष्ठों के कार्य में तालमेल न रहें, या बायें, ग्राहक कोष्ठ और बायें क्षेपक कोष्ठ के बीच का पर्दा, अर्थात् ''मिट्रल व्हाल्व'' यदि कमजोर पड़ जायें, तो फेफड़ों की परिवाहिनियों में से रक्त आगे हृदय के बायें ग्राहक कोष्ठ में जाने की गति मंद होकर रक्त फेफड़ों की परिवाहिनियों में रुका रहता है। उससे ''कार्डियाक अस्थमा'' हो जाता है। उसका उपाय यौगिक व्यायामों से नहीं हो सकता।

दमा का दूसरा प्रकार है ''ब्रॉंकियल अस्थमा'', जो श्वासवाहिनियों की कमजोरी, असहनीयता तथा कड़ापन से निर्माण होता है। इसको दूर करने में योग व्यायामों से बहुत लाभ मिलता है।

**उपाय – 1** दमा का जब दौर चल रहा हो, तब तो दवाइयाँ लेना, नाक में असहनीय धूलिकण, पुष्प पराग या ठंडी हवा न जाने पाये इसलिये नाक के ''फिल्टर'' का उपयोग करना आवश्यक होता है। दौर या ''अटेक'' खत्म होने के बाद स्वस्थ अवस्था में योग व्यायाम करने चाहिये। उनमें जलनेति तथा सूत्रनेति, वस्त्रधौति, या वस्त्र धौति न बनने पर वमन धौति का प्रयोग बीच–बीच में करते रहना चाहिये तथा प्रतिदिन नियमित रूप से आधारभूत योग व्यायाम क्रम तथा बाह्य कुंभक का अभ्यास करते रहना चाहिये। जब ''अटेक'' आने की संभावना लगे तो उपवास करना चाहिये और गरम पानी पीते रहना चाहिये। सुबह शाम पैरों का गरम नहान लेना उपयुक्त होता है।

2. हफ्ते में एक दिन पूर्ण उपवास तथा एक दिन रसाहार लेना चाहिये। रात्रि का भोजन देरी से न करें। अधिक भोजन हमेशा वर्जित करें। भोजन में सब्जी तथा फल, जैसे चीकू, पपीता, केला, अंजीर, मौसंबी आदि का प्रयोग करें ताकि कब्ज की शिकायत न रहे। कब्ज हो तो एनिमा ले लें। नमक कम लेना उपयुक्त है।

3. प्राकृतिक चिकित्सा में लंबा उपवास, दूध एवं किशमिश का कल्प, छाती की लपेट तथा पैरों का गरम नहान, इन उपायों से दमा की शिकायत कम करने में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

## IV - मूत्र वाहक अथवा त्यागन संस्थान : उत्सर्जन–तन्त्र

**(The Excretory or urinary system) :-**

**उत्सर्जन तंत्र के प्रमुख अवयव** :–

उत्सर्जन संस्थान के अन्तर्गत निम्नलिखित अवयवों की गणना की जीती है–

(1) फेफड़े (Lungs)

(2) त्वचा (Skin)

(3) बड़ी ऑते (Large Inestines)

(4) वृक्क या गुदे (Kidney)

(5) मूत्राशय (Bladder)

(6) मलाशय (Rectum)

उत्सर्जन संस्थान के अवयवों की कार्य–प्रणाली निम्नानुसार होती है :–

**फेफड़े** –

फेफड़ों के द्वारा रक्त की विषाक्त गैस (कार्बनडाई ऑक्साइड) को बाहर निकाला जाता है। इनकी कार्य विधि का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

**त्वचा** –

शरीर की अशुद्धियों को पसीने के रूप में बाहर निकालने का कार्य 'त्वचा' का है। पसीने में 98 प्रतिशत जल तथा 2 प्रतिशत शारीरिक–अशुद्धियाँ अम्ल तथा खनिज द्रव्यों के रूप में रहती है। भोजन के प्रकार एवं ऋतु के प्रभावनुसार पसीने की मात्रा में अन्तर होता रहता है। अधिक तरल द्रव्यों तथा फलों का सेवन करने से पसीने की मात्रा बढ़ जाती है। ग्रीष्म ऋतु में जब पसीना खूब निकलता है, तब मूत्र की मात्रा घट जाती है, परन्तु शीत ऋतु में पसीना बहुत कम निकलने पर मूत्र की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

**बड़ी आँत –**

यह शरीर के विषैले तथा निस्सार पदार्थ को मल के रूप में बाहर निकालने का कार्य करती है। छोटी आँत जहाँ समाप्त होती है, वहाँ से बड़ी आँत आरंभ होती है। यह उदर के दाँये निम्न भाग में, जिसे 'कोख' (Iliac region) कहा जाता है और जिससे उपान्त्र अथवा अन्त्र–पुट (Intestinal Caccum) मिली होती है, से निकलती है। यह छोटा आँत से अधिक चौड़ी तथा लगभग 5–6 फुट लम्बी होती है। इसका अंतिम डेढ़ अथवा 2 इंच का भाग ही 'मलद्वार' अथवा 'गुदा' कहा जाता है। गुदा के ऊपर वाले 4 इंच लम्बे भाग को 'मलाशय' कहते हैं। यह बड़ी आँत, छोटी आँत के चारों ओर घेरा डाले पड़ी रहती है।

छोटी आँत की तरह ही बड़ी आँत में भी 'कृमिवत्' आकुंचन होता रहता है। इस गति के कारण छोटी आँत से आए हुए 'आहार–रस' (Chyme) के जल भाग का शोषण होता रहता है। छोटी आंत से बचा हुआ आहार–रस जब बड़ी आँत में आता है, तब उसमें 95 प्रतिशत जल रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ भाग प्रोटीन, कार्बोवेज तथा वास का भी होता है। बड़ी आँत में इन सबका आक्सीकरण होता है तथा जल के बहुत बड़े भाग को सोख लिया जाता है। अनुमानतः 24 घण्टे में बड़ी आँत में 400 c.c. पानी का शोषण होता है। यहाँ से भोजन रस का जलीय भाग रक्त में चला जाता है तथा गाढ़ा भाग मलवे के रूप में 'मलाशय' में होता हुआ 'मलद्वार' से बाहर निकल जाता है।

बड़ी आँत में सड़ांध उत्पन्न करने वाले अनेक कीटाणु होते हैं, जो इण्डोल (Indol) तथा स्कैटोल (Skatal) नामक अनेक प्रकार के हानिकारक पदार्थ उत्पन्न करने मल में दुर्गन्ध पैदा कर देते हैं। मल में जीवाणुओं की संख्या अत्यधिक होती है। एक बार के मल में लगभग 128,00,00,00,00,000 जीवाण शरीर से बाहर निकला करते हैं।

**मलाशय –**

बड़ी आँत से आया हुआ मल इसमें होता हुआ गुदा–द्वार से बाहर निकल जाता है।

**मूत्र (Urine)**

'मूत्र' एक प्रकार का तरल पदार्थ है, जिसमें रक्त से छोड़ा हुआ दूषित पदार्थ रहता है। जब रक्त भ्रमण करता हुआ वृक्क (Kidney) में पहुँचता है, उस समय वृक्क अनावश्यक पदार्थों के रूप में पृथक कर जलीय तरल अर्थात् 'मूत्र' के रूप में मूत्राशय (Bladder) में धकेल देता है। तदुपरान्त वह मूत्र–नली द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

मूत्र का रंग स्वच्छ हल्का पीला अथवा भूरा होता है। समयानुसार इसके रंग में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता है। जैसे – रात भर सोने के बाद प्रातः काल इसका रंग गहरा होता है। गर्मी के दिनों में भी इसका रंग गहरा हो जाता है। मूत्र की मात्रा घटने से भी रंग गहरा हो जाता है तथा बढ़ने पर हल्का हो जाता है। रूग्णावस्था में भी मूत्र का रंग बदल जाता है।

सामान्यतः मूत्र में कोई उग्र गन्ध नहीं होती, परन्तु त्यागने के कुछ समय पश्चात् उसमें से 'अमोनिया' जैसे गंध आने लगती है। विभिन्न प्रकार के रोगों की अवस्था में भी मूत्र को गंध में परिवर्तन हो जाता है। मूत्र का आपेक्षिक गुरूत्व प्रायः 1.015 से 1.025 तक होता है, परन्तु विभिन्न रोगों में इसमें घट–बढ़ हो जाया करती है। मूत्र की प्रतिक्रिया सामान्यतः अम्ल (Acid) हो जाती है खाना खाने के बाद यह क्षारीय (Alkaline) हो जाती है तथा भिन्न–भिन्न समयों पर बदलती भी रहती है।

मूत्र में 960 भाग जल तथा 40 भाग ठोस पदार्थ (Solids) पाये जाते हैं। 24 घण्टे में प्रायः 2 – 2½ ओंस ठोस–पदार्थ मूत्र द्वारा हमारे शरीर से बाहर निकलते हैं। ठोस पदार्थो में यूरिया, यूरीकाम्ल, सोडियम, क्लोराइड, गन्धकाम्ल, क्लोरीन, पोटाशियम, सोडियम, कैल्शियम तथा अमोनिया आदि होते हैं। इनमें भी यूरिया, सोडियम तथा क्लोराइड की मात्रा ही अधिक पाई जाती है।

विकारावस्था में मूत्र से रक्त, पीब, पित्त, शर्करा रोमीटोन आदि अस्वाभाविक पदार्थ भी निकलते हैं।

सामान्य स्थिति में एक वयस्क मनुष्य 24 घण्टे में लगभग 1 से 1½ किलो तक मूत्र का त्याग करता है। इससे कम अथवा अधिक मात्रा में मूत्र का निकलना ठीक नहीं माना जाता। ग्रीष्म ऋतु में पसीना अधिक निकलने पर मूत्र की मात्रा में कमी आ जाती है तथा शीत ऋतु में वृद्धि हो जाती है—यह बात पहले कही जा चुकी है।

मूत्र–संस्थान के मुख्य अवयव तथा उनके कार्य निम्नानुसार हैं।

**वृक्क अथवा गुर्दे (KIDNEY) तथा सम्बन्धित अंग और कार्य :–**

वृक्क–शरीर में जो अवयव मूत्र–निर्माण का कार्य करते हैं, उन्हें वृक्क अथवा गुर्दे कहा जाता है। ये संख्या में 2 होते हैं (1) दाँया और (2) बाँया। ये गुर्दे रीढ़ के दाँई ओर तथा बाँई ओर 12 वीं पसली के सामने तथा चौथे कटि–कशेरुक के बीच रहते हैं। इन ग्रंथियों का आकार 'गुठली' अथवा 'लोबिये के बीज' जैसा होता है। एक वृक्क आकार में 5 इंच लम्बा, 2½ इंच चौड़ा तथा 1 इंच मोटा तथा लगभग 150 ग्राम भार वाला होता है। इसका रंग कुछ बैंगनी जैसा होता है। दाँया वृक्क कुछ नीचे तथा बाँया वृक्क कुछ ऊपर की ओर रहता है। वृक्क के ऊपर एक आवरण सा चढ़ा रहता है। प्रत्येक वृक्क का बाहरी भाग कुछ उन्नत तथा भीतरी भाग कुछ अवनत होता है। वृक्क के ऊपरी सिरे पर टोपी जैसी एक प्रणाली–विहीन ग्रंथि होती है, जिसे उपवृक्क (Adernal) कहा जाता है। इसके धँसे हुए भाग के बीच के छिद्र को 'हाईलम' (Hilum) कहते हैं। प्रत्येक वृक्क के भीतर लगभग डेढ़ लाख अत्यन्त महीन नलिकाऐं (Tubules) होती हैं, जो आकार में एक दूसरी से भिन्न होती है।

मूत्र प्रणाली–वृक्क के दोनों ओर से एक–एक नली निकलती है, जिन्हें 'मूत्र–प्रणाली' (Ureters) कहा जाता है। यह प्रणालियाँ मूत्र के तैयार होते ही उसे मूत्राशय (Urinary Bladder) में पहुँचाने का कार्य करती है। मूत्राशय गुर्दे के भीतर ही रहता है। मूत्र–प्रणाली एक छोटी नली होती है। जो कीड़े की भांति गति करती है। इसका विस्तार गुर्दे से मूत्राशय तक ही रहता है। इनकी लम्बाई 10 से 12 इंच तक पाई जाती है। इनके दो सिरे होते है। ऊपर वाला चौड़ा सिरा वृक्क से तथा

नीचे वाला पतला सिरा 'वस्तिगहर' (Pelvis) में 'मूत्राशय' (Bladder) से मिला रहता है।

मूत्र पहले वृक्क (Kideny) की मीनारों (Pyramids) से मूत्र–प्रणाली के चौड़े भाग में आता है, फिर इनके द्वारा बहता हुआ मूत्राशय में जा पहुंचता है।

वृक्क का कार्य बूँद–बूँद करके मूत्र बनाना तथा उसे मूत्राशय में भेजना है। स्मरणीय है कि मूत्र के मुख्य अवयव वृक्क के भीतर तैयार न होकर शरीर के अन्य भागों में ही बनते हैं, वृक्क उन्हें रक्त से अलग करके 'मूत्र का रूप' दे देता है।

मूत्राशय – इसे 'वस्ति' अथवा 'मसाना' भी कहते हैं। यह एक थैली जैसी होती है, जिसमें मूत्र–प्रणालियों द्वारा लाया गया मूत्र संचित होता रहता है। यह उदर में सबसे निचले भाग में, वस्तिगहर (Pelvis) में रहता है। पुरूषों में यह मलांग के सामने की ओर तथा स्त्रियों में जरायु के सामने वाले भाग में रहता है। खाली होने पर आकार 'तिकोना' होता है तथा भर जाने पर यह बिल्कुल 'गोल' हो जाता है। मूत्र से भर जाने पर यह उठा रहता है। इसके भर जाने पर मनुष्य को मूत्र–त्यागने की इच्छा होती है।

मूत्राशय सामान्यतः 5 इंच लम्बा तथा 3 इंच चौड़ा होता है। इसमें 7 औंस तक मूत्र समा सकता है। पुरुषों में इसके पीछे शुक्राशय तथा स्त्रियों में गर्भाशय (Uterus) की स्थिति रहती है।

मूत्रमार्ग– जिस रास्ते से मूत्र निकलता है, उसे मूत्रमार्ग कहते हैं। यह मूत्राशय के एकदम निचले भाग ऐ एक नली के रूप में आरंभ होता है। पुरूषों में यह लगभग 8–9 इंच लम्बा होता है तथा इसमें 2 झुकाव या घुमाव होते हैं। इसके प्रारंभिक भाग में प्रोस्टेट ग्रंथि (Prostate Gland) रहती है। यह मार्ग प्रोस्टेट ग्रंथि के आगे से शिश्न (Penis) के निम्न भाग तक रहता है तथा शिश्न (लिंग) के बहिर्भाग पर जो छिद्र होता है, वहां समाप्त होता हैं। लिंग के इस छिद्र को मूत्र बर्हिद्वार कहते हैं। इसके मार्ग में दो घुमाव होते हैं, अस्तु, मूत्र बर्हिद्वार अर्थात् शिश्न

के एक ही छिद्र से मूत्र तथा शुक्र (वीर्य) दोनों के अलग–अगल निकलने की क्रियाएें सम्पन्न होती है।

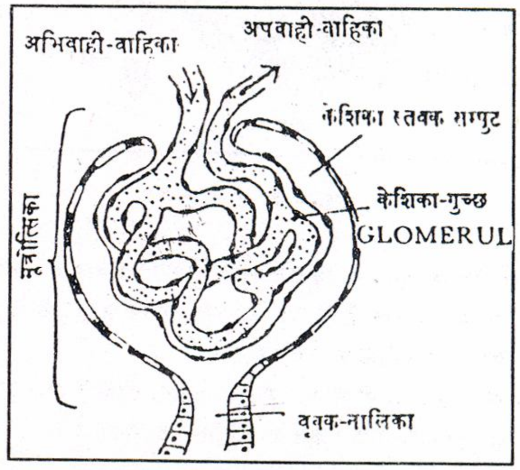

(मूत्रोत्सिका)

स्त्रियों का मूत्र मार्ग लगभग 1½ इंच लम्बा होता है।

उसकी नली योनि की दीवार से मिली रहती है तथा उसका छिद्र योनि–छिद्र से लगभग आधा इंच ऊपर की ओर रहता है। स्त्रियों के मूत्र–मार्ग से केवल मूत्र ही निकलता है।

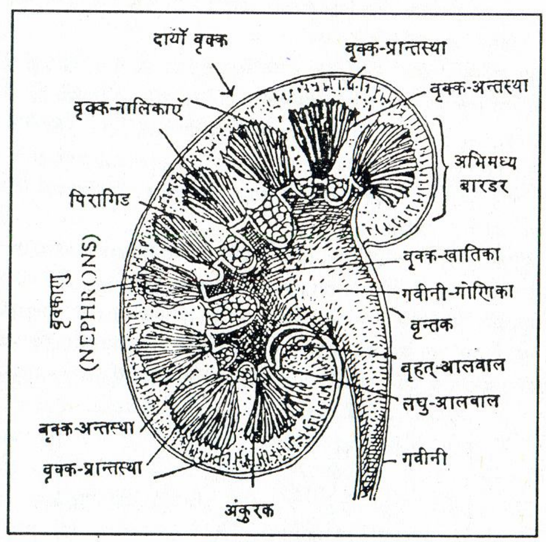

(वृक्क की सूक्ष्म रचना)

अन्य कार्य—'वृक्क' हृदय का भी एक महत्वपूर्ण सहायक अड्ड है। यदि किसी कारणवश वृक्क के कार्य में रुकावट पड़ जाती है तो रक्त के भीतर अम्ल तथा क्षार के अनुपात में अन्तर आ जाता है एवं रक्त का दबाव अधिक बढ़ जाता है।

वृक्क प्लाज्मा (Plasma) पर भी नियन्त्रण (Control) करता है तथा ग्लूकोज (Glucose) एवं यूरीया (Urea) नामक तत्वों के घनत्व को भी नियंत्रित रखता है।

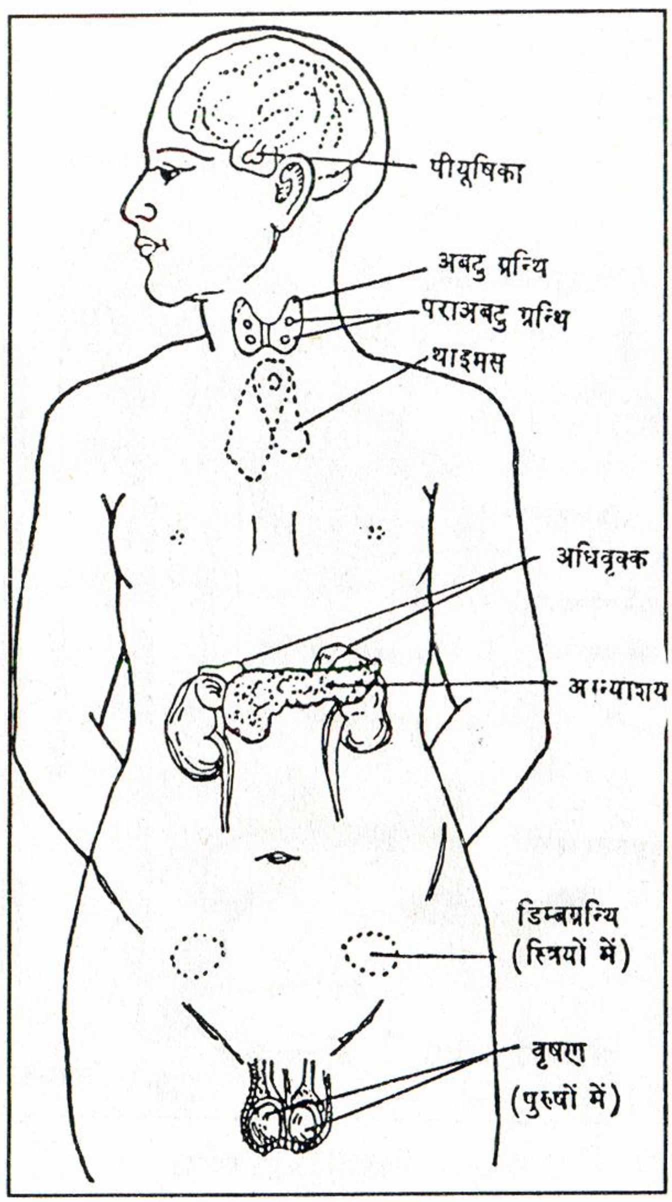


(अन्तःस्रावी तंत्र)

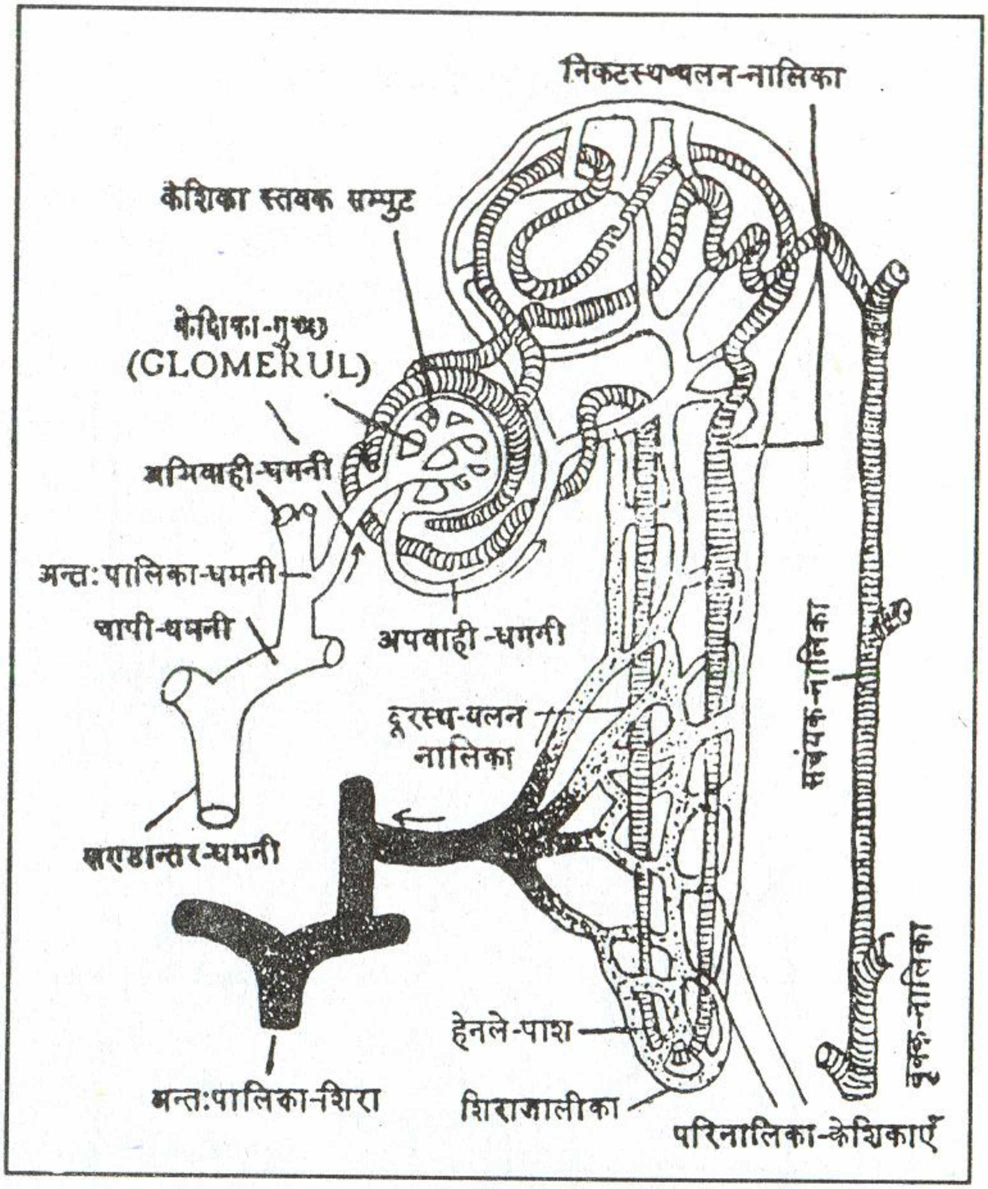


(वृक्काणु में छनन-क्रिया)

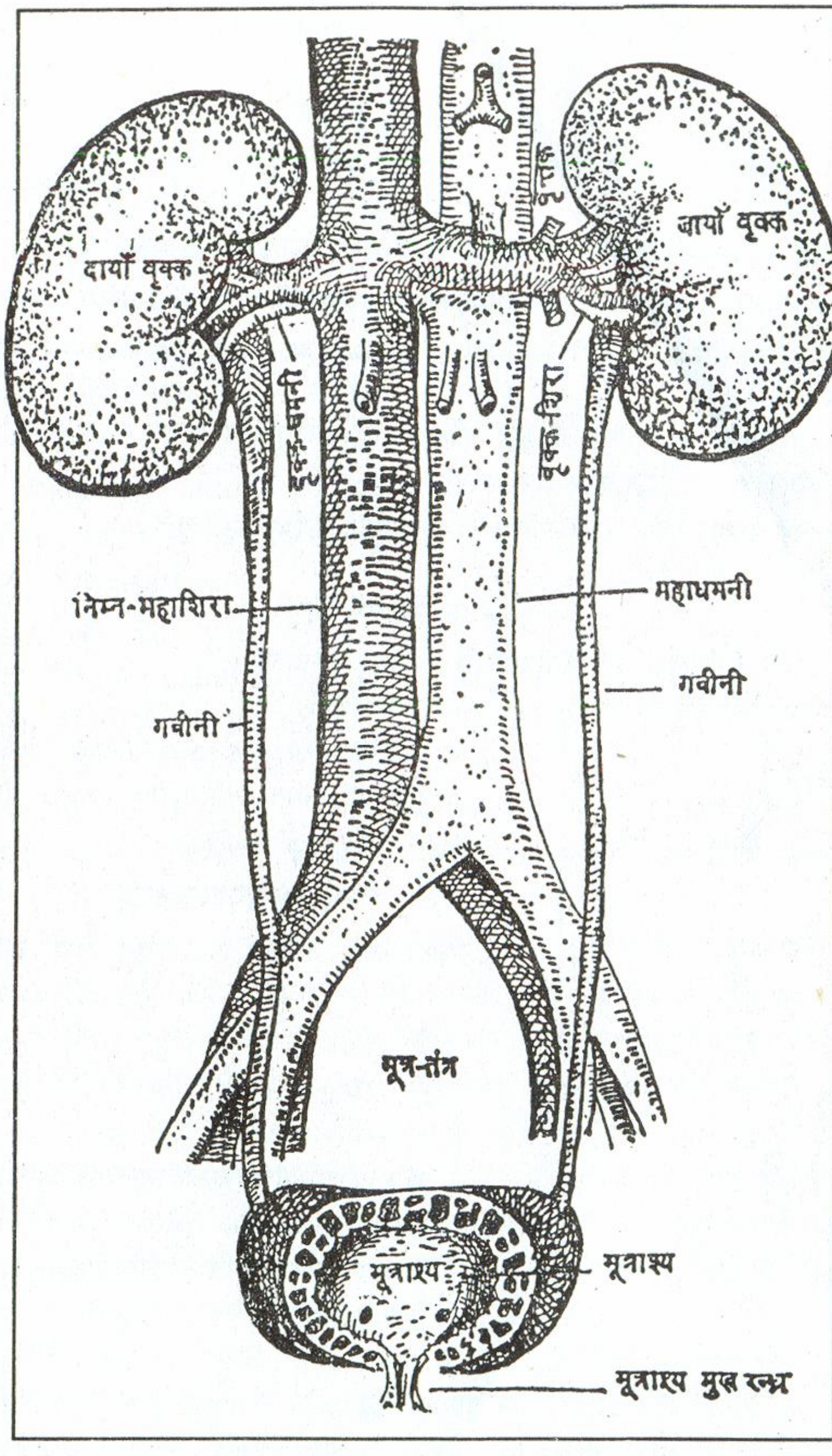
बायाँ वृक्क
दायाँ वृक्क
वृक्क
वृक्क-धमनी
वृक्क-शिरा
निम्न-महाशिरा
महाधमनी
गवीनी
गवीनी
मूत्र-तंत्र
मूत्राशय
मूत्राशय
मूत्राशय मुख रन्ध्र

(मत्र तंत्र)

## V - ज्ञानेन्द्रियाँ

मनुष्य शरीर में (1) दृष्टि (Sight or vision) (2) श्रवण (Hearing) (3) घ्राण (Smell), (4) स्वाद (Taste) तथा (5) स्पर्श (Touch) इन बातों का ध्यान कराने वाली 5 ज्ञानेन्द्रियाँ ईश्वर ने दी हैं, जिनकी क्रिया विधि मुख्यतः वातनाड़ी संस्थान ासे ही सम्बन्ध रखती है। ये इन्द्रियाँ निम्नलिखित हैं :–

1. आँख (Eye) –इनका काम देखना है।
2. कान (Ear) –इनका काम सुनना है।
3. नाक (Nose) –इसका काम सूँघना है।
4. जिह्विा (Tongue) –इसका काम स्वाद लेना है।
5. त्वचा (skin) – इसका काम स्पर्शानुभूति है।

ये सभी इंन्द्रियाँ विभिन्न संवेदनाओं को मस्तिष्क तक पहुंचाती है तथा मस्तिष्क द्वारा प्रदत्त आज्ञाओं का पालन भी करती हैं। इनके संबंध में प्रथक–प्रथक निम्नानुसार समझना चाहिए।

### आंख (Eye)

यह दृष्टि–विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। इसका सम्बन्ध दृष्टि–नाड़ी द्वारा मस्तिष्क से रहता है। मनुष्य के कपाल के भीतर, नाक के दोनों ओर एक–एक गहरा गड्ड़ा है, जिसे 'नेत्र गुहा' (Orbit) कहते हैं। इन्हीं गड्डों में एक–एक आंख स्थित रहती है। आँखें अपने सामने की ओर एक पर्दे से ढँकी रहती हैं, जिसे 'पलक' (Eyelids) कहा जाता है। ये पलकें दो भागों में बँटी रहती हैं – ऊपरी तथा निचली। पलकें एक प्रकार की कड़ी तह (Tartus) द्वारा स्थित रहती हैं। इनके किनारे पर छोटे–छोटे केश होते हैं। जो बाहरी धूल–गर्द आदि से आँखों की रक्षा करते हैं। पलकों के भीतरी भाग में 'श्लेष्मता– (Conjuctiva) नामक एक महीन पारदर्शी झिल्ली लगी रहती है, यह दुहरी होकर नेत्र–गुहा को ढँके रखती है।

आँख का बाहा आयतन बादाम जैसा होता है। परन्तु पिछला भाग गोल रहता है, जो मस्तिष्क से जुड़ा रहता है। आँख के उपाङ्ग. निम्नलिखित हैं–

**(1) भौहें (Eye Brows)** – ये प्रत्येक चक्षु–गहर के ऊपर एक टेढ़ी केशदार लकीर के रूप में रहती है। इनमें छोटे–छोटे बाल होते हैं।

**(2) पलकें (Eye lids)** – यह बराबर खुलती तथा बन्द होती रहती है। इनके द्वारा आँखों की रक्षा होती है। इनका वह भाग–जो ऊपरी तथा निचली पलक से मिला रहता है, चक्षु–कोण (Canthus) कहा जाता है।

आँख की ऊपरी पलक नेत्रोच्छदा–पेशी के सहारे उठती है। भीतरी चक्षु–कोण में चक्षु कला (Conjunctiva) की एक तह होती है, जिसे ऊर्ध्व चन्द्राकार पलक–चक्षु कला' (Plica Senilunarus) कहा जाता है।

**(3) अश्रु ग्रंथियाँ (Lacrymal Glands)** – पलकों के भीतर कुछ ऐसी ग्रंथियाँ भी रहती हैं जो अश्रु अर्थात् आँसू (Tears) उत्पन्न करती हैं। पलकों के स्वतन्त्र भाग में एक तिरछी नली निकलती है, जिसके द्वारा ये आँसू आँखों के पास गिरते हैं। इसी नली के मिडियल (Medical) सिरे से एक अन्य नली आरंभ होती है, जो सीधी नाक में जाकर खुलती है, इसे अश्रुनासा नली (Naso-Lacrymal Duct) कहते हैं। इनका नियंत्रण अनैच्छिक तन्त्रिकाओं द्वारा होता है।

चक्षु–गहर में चक्षु–गोलक (Eye Ball) स्थित रहते हैं, यह पहले कहा जा चुका है। यह चक्षु गोलक तीन पर्दो से ढँका रहता है। इनमें पहले बाह्य–आवरण को 'कनीनिका' या 'कार्निया' (Cornea) कहते हैं। आँख की पुतली के अतिरिक्त अन्य सभी भाग, जो सम्पूर्ण नेत्रभाग का लगभग दो तिहाई होता है, अपारदर्शक होता है।

चक्षु गोलक के दूसरे आवरण के ऊपर वाला बीच का भाग बहुत चमकीला होता है, इसे शुभ्रमण्डल (Selerotic) कहा जाता है। इस श्वेत पर्दे के निम्न भाग में एक छिद्र होता है, जिसे 'आँख का तारा' (Pupil) कहते है। इसी छिद्र में होकर दर्शन–स्त्रायु (Optic Nerve) भीतर पहुँचते हैं।

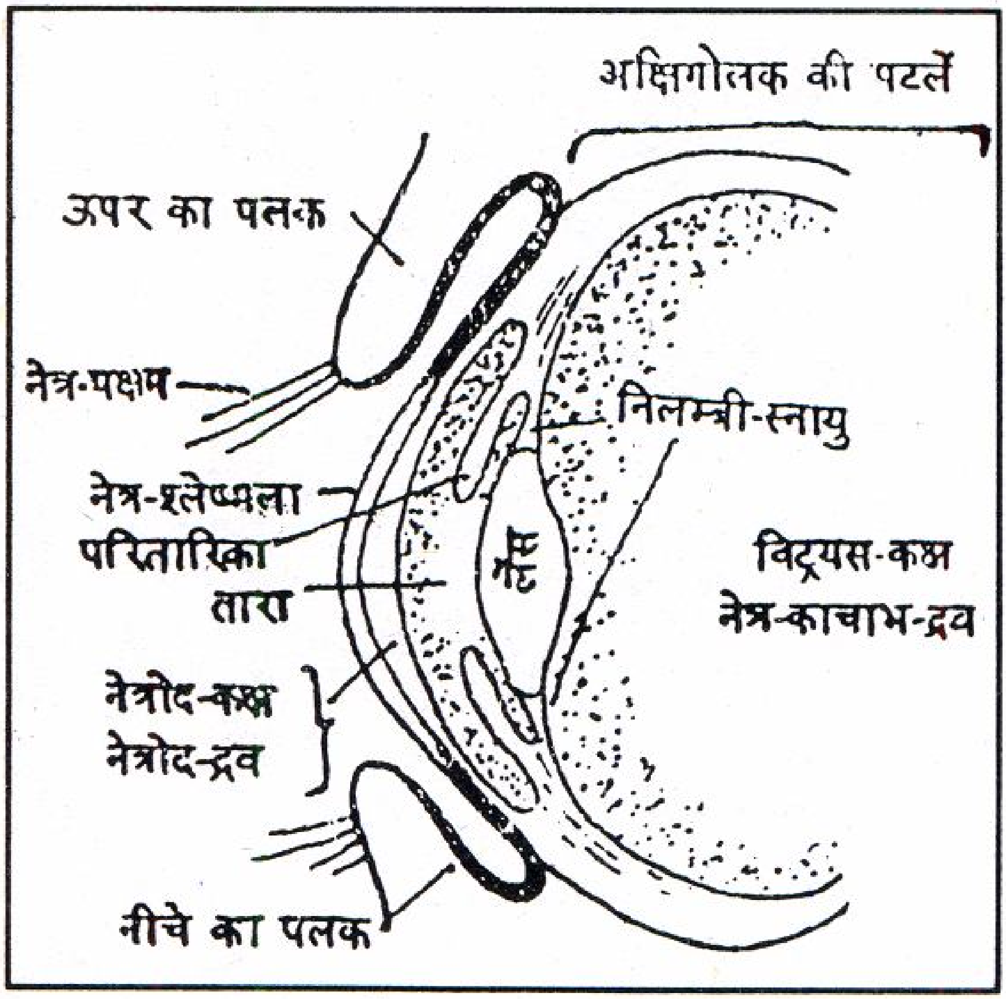


(अक्षिः गोलक का अग्रभाग)

आँख के गोले के ऊपर वाला तीसरा आवरण 'कृष्ण पटल' (Choroid) है। इसे चित्र–पत्र (Retina) भी कहते हैं। यह देखने में एक महीन जाल जैसा होता है। इसमें अनेक स्त्रायु तथा रक्त वाहिनियाँ रहती हैं।

आँख की बीच वाली झिल्ली के जाल जैसे आवरण के मध्य में 'बहिवर्तुल काँच' (Convex lens) की भाँति एक स्वच्छ पर्दा लगा रहता है। आँख की पुतली के भीतर से जो एक दृश्य किरण चक्षु–गोलक में जाती है, उसी के कारण दृश्य–ज्ञान होता है। आँख के पिछले भाग में पानी एवं अण्डलाल जैसे दो चमकीले पदार्थ (Agnous and Viteron Humour) रहते हैं। 'रैटिना' पर गिरने वाली किरणें इसमें होती हुई तुरन्त ही मस्तिष्क में जा पहुँचती, वहाँ वे उल्टी–आकृति बनाती हैं, वह उल्टी आकृति परावर्तित होकर जब 'रैटिना' के पीत–बिन्दु (Yellow Spot) पर

गिरती हैं तो वात सम्वेदना उत्पन्न होकर दृष्टि–नाड़ी (Optic Nerve) द्वारा उसे सीधा रूप दे देती है, फलतः हमें दर्शनीय वस्तु ज्यों की त्यों दिखाई देती है। यथार्थ में, आँख की रचना एक कैमरे की रचना जैसी होती है। जिस प्रकार कैमरे में वास्तविक तथा उल्टे प्रतिबिम्ब बनते हैं, उसी प्रकार आँख से भी बनते हैं, परन्तु मस्तिष्क उस उल्टे प्रतिब्रिम्ब को सीधा करके दिखाता रहता है। धूप के समय आँख की पुतलियाँ सिकुड़ जाती हैं तथा अँधरे में फैल जाती हैं।

## कान (EAR)

यह श्रवण–क्रिया विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। ये खोपड़ी की जड़ में दाँई था बाँई ओर स्थित रहते हैं। इस प्रकार आँख की भाँति कान भी संख्या में 2 होते हैं। रचना के आधार पर इसके तीन विभाग होते हैं –

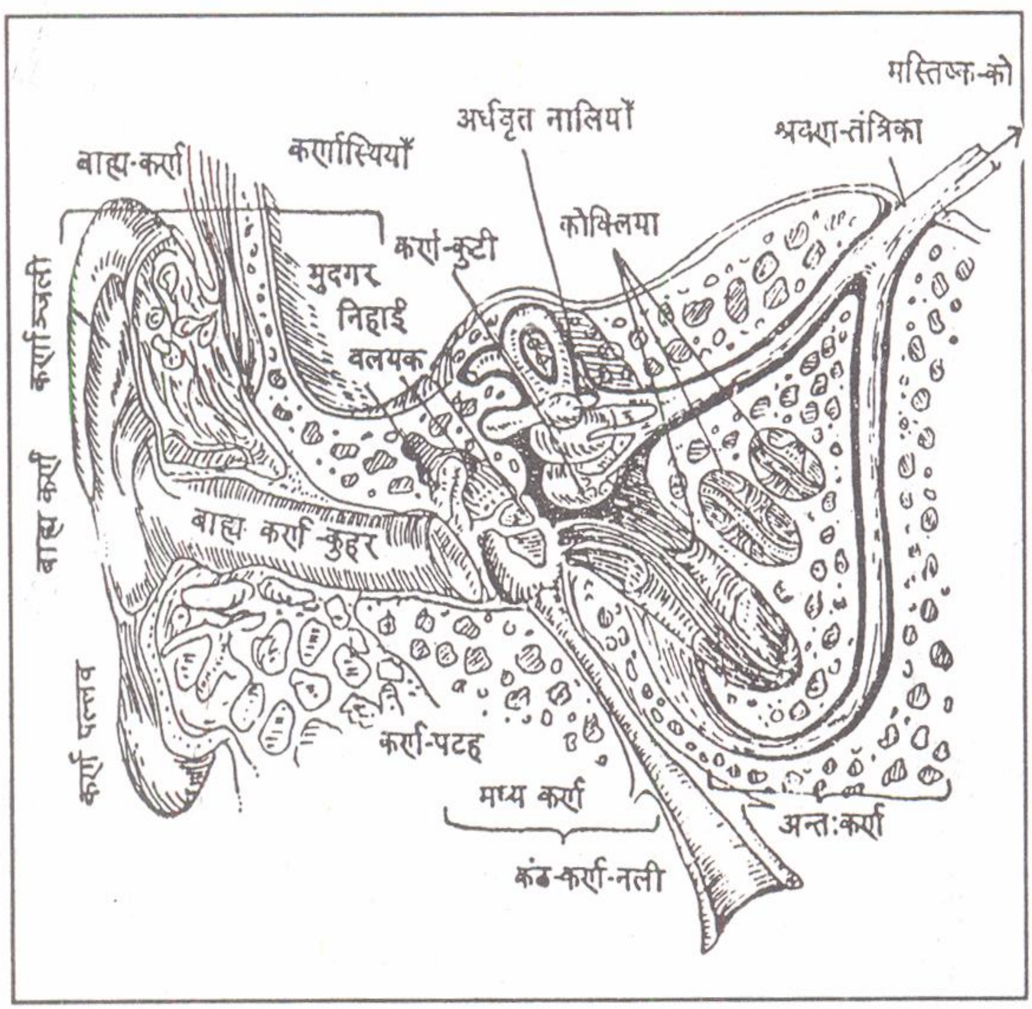


(कान की आन्तरिक-रचना)

(1) बाह्य कर्ण (External Ear)

(2) मध्य कर्ण (Middle Ear)

(3) अन्तः कर्ण (Internal Ear)

इनके विषय में अधिक विवरण निम्नानुसार समझना चाहिए –

वायुमण्डल में उपस्थित ध्वनि–लहरों (Sound Waves) को बाह्य कर्ण इकठ्ठा करके मध्यकर्ण स्थित श्रवण झिल्ली (Tympanic membrane or Ear Drum) पर टकराने के लिए भेजता है, जिसके फलस्वरूप वात–प्रेरणाऐं (Nerveous Impulses) उत्पन्न होती है। उन श्रवण सम्वेदनाओं को अन्तः कर्ण श्रवण–नाड़ी (Auditory Nerve) द्वारा मस्तिष्क में भेज देता है, जिससे सुनने की क्रिया सम्पन्न होने लगती है।

बाह्य कर्ण – इसके दो उप–विभाग हैं–(1) कर्ण–पुट (Pinna) तथा (2) कर्ण–कुहर (External auditory meatus) ।

कर्ण–पुट एक उपास्थि है, जो शब्द संग्रह करके कर्ण–कुहर में भेजती है। यह उपास्थि चमड़े से वेष्टित रहती है। इसके अन्दर तीन छोटी–छोटी मांसपेशियाँ भी रहती हैं जो इसे हिलाती डुलाती है।

'कर्ण–पटह' (Tympanic membrane) नामक झिल्ली से जा मिलता है। कर्ण–कुहर, जिसे 'श्रवण–नली' भी कहा जाता है। लगभग 1½ इंच लंबी होती है। इसमें एक पतली खाल का स्तर लगा रहता है, जिसमें कुछ छोटी–छोटी ग्रंथियाँ रहती हैं जिन्हें 'कर्ण–मल स्त्रावी ग्रंथि' (Wax Gland) कहा जाता है। ये ग्रंथियां 'मैल' निकालकर कर्ण–कुहर को तर (गीला) बनाये रखती है। इसके अतिरिक्त यहीं पर एक कण्ठकर्णी नली (Eustachian tube) भी रहती है, जो कर्ण–कुहर के भीतरी तथा बाहरी भाग के दबाव को सम बनाये रखती है। श्रवण–नली में कुछ छोटे–छोटे बाल भी होते हैं, जो कान में फँसने वाली गन्दी वस्तुओं को फँसा कर मैल के रूप में बदल देते हैं। यह पूरी नली दो भागों में बँटी रहती है। कार्टिलेज का बना पहला भाग बाहरी ओर हड्डी से बना दूसरा भाग भीतर की ओर रहता है।

मध्य कर्ण–यह एक छोटी सी सुरंग जैसा भाग है। इसमें तीन छोटी हड्डियाँ शंख की भाँति आपस में मिली रहती हैं। इसमें सर्वत्र एक पतली श्लैष्मिक–झिल्ली लगी रहती है, जिसमें हवा भरी होती है। इसकी बाहरी दीवार कर्ण–पटह निर्मित है, जिसमें दो छिद्र होते हैं–एक अण्डाकार, दूसरा गोल। इसके अन्य भाग कनपटी की हड्डियों से बने होते हैं। इसकी सामने की दीवार में कण्ठकर्णी नली (Eustachian Tube) का मुँह होता है। इस नली द्वारा मध्य कान का कण्ठ से संबंध बना रहता है। यदि नाक तथा मुँह के छिद्रों को बन्द कर दिया जाये तो इस नली में होकर श्वास कान के रास्ते से जाने लगती है। कान के इस भाग में तीनों हड्डियों को क्रमशः (1) 'मुगदर' (Hummer) (2) 'नेहाई' (Anvil) तथा 'रकाब' (Stirrpu) कहा जाता है। इन हड्डियों के माध्यम से कर्ण–पटह पर वायु रूप में पहुँची हुई शब्द लहरियाँ (ध्वनि–तरङ्ंे.) ठोस वस्तुओं की गति में बदलकर भीतर–कान तक पहुँचती हैं।

**अन्तःकर्ण**–इसकी रचना बड़ी जटिल तथा विचित्र है। इसके भीतर गहन घूम–घुमावदार होता है। इसकी दीवार हड्डियों से बनी होती हैं तथा वेसी ही झिल्ली भी होती है। इसके भीतर एक प्रकार का द्रव–पदार्थ भरा रहता है। ध्वनि तरंगों के कारण जब 'रकाब' नामक हड्डी की जड़ में कम्पन होता है, तब झिल्ली की गहन–दीवार भी हिलती है, जिससे तरल द्रव अर्थात् अन्तः कर्णोदक (Endolymph) हिलने लगता है और शब्द–तरंगें अन्तः कर्ण के कुण्डलाकार भाग में घूमकर श्रवण नाड़ी जाल, जो उसी द्रव में तैर रहे होते हैं, के माध्यम से मस्तिष्क को सूचना देती है, जिसके प्रभाव से सुनने की क्रिया सम्पन्न होती है।

मस्तिष्क से निकले हुए श्रवण–स्त्रायु (Auditory Nerves) अन्तः कर्णोदक में प्रविष्ट होकर हजारों भागों में बँटे रहते हैं। बाहरी कान अपने द्वारा संग्रहीन शब्दों को केवल कर्ण–पटह तक पहुँचाता है। कर्ण–पटह अपने स्पन्दन से उसकी तीव्रता को बढ़ाता है। उस समय कान की (1) प्रसार तथा (2) उत्थायिका नामक दो पेशियाँ उन्हें नियोजित करके ठीक स्थान पर पहुँचाती हैं। कण्ठकर्णी नली के सहयोग से इस क्रिया में दबाव तथा सामंजस्य ठीक–ठीक बना रहता है।

छोटे बच्चों के कान के पर्दे में स्पन्दन की गति अधिक होती है। तत्पश्चात् जैसे–जैसे उम्र बढ़ती जाती है, यह गति भी कम होती चली जाती है।

## नाक (NOSE)

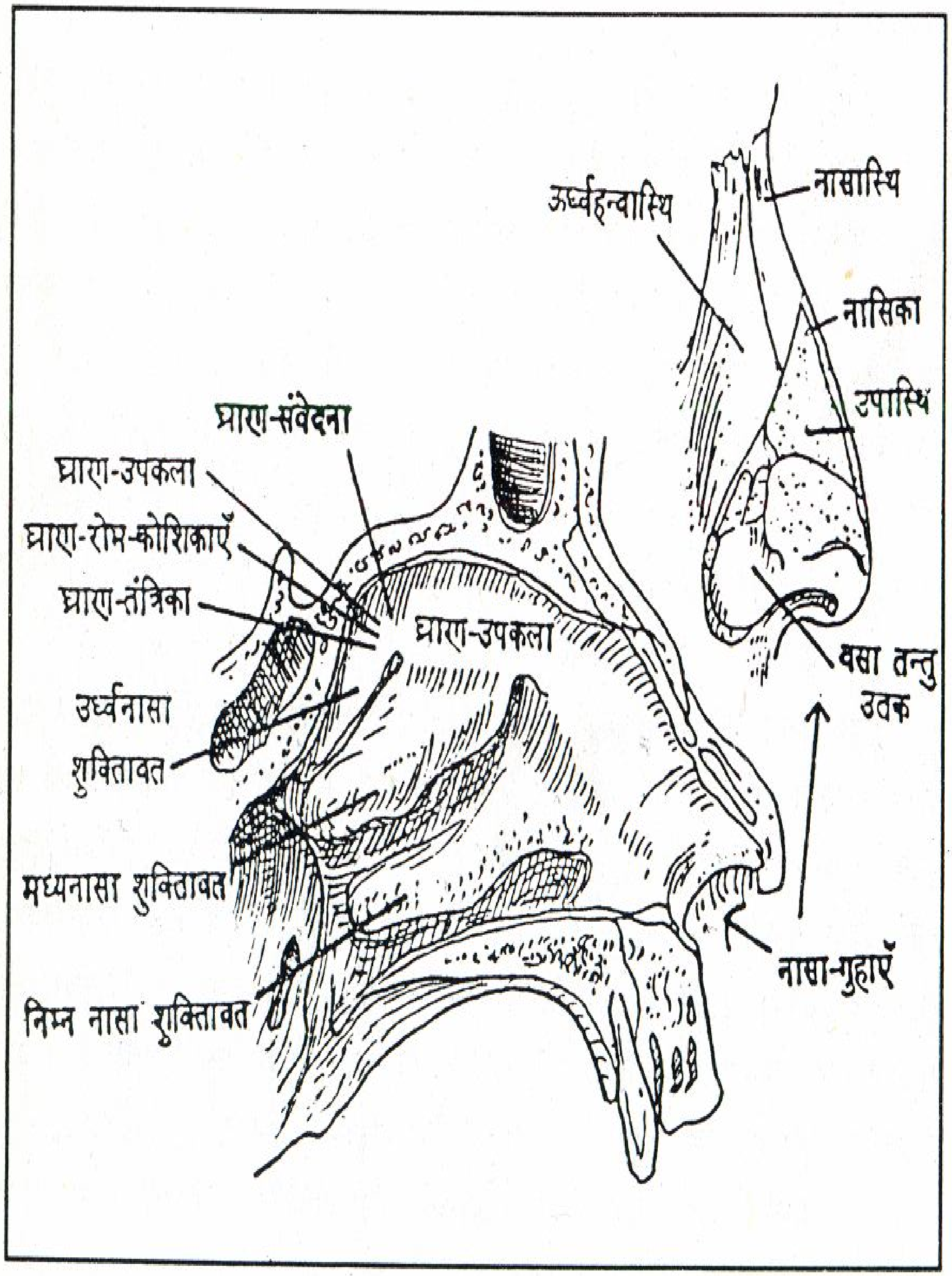


(नाक की बनावट)

यह घ्राण क्रिया विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। यह चेहरे के बीचों–बीच, दोनों आँखों के मध्य में स्थित है। इसकी लम्बीदीवार एक उपास्थि द्वारा निर्मित होती है, जो इसे दो भागों में विभाजित करती है। अतः नाक के दो छिद्र होते हैं। नाक के बाहरी भाग को बहिर्नासा (External Nose) तथा भीतरी भाग को 'नासागुहा' (Nosal Fossa) कहा जाता है।

बर्हिनासा का ऊपरी कठोर भाग अस्थि निर्मित होता है तथा नीचे का कोमल भाग मांस, कार्टिलेज तथा त्वचा निर्मित होता है। दोनों नासा–छिद्रों (Nostrils) में छोटे–छोटे बाल उगे रहते हैं, जो बाहरी गन्दगी को नाक के भीतर प्रविष्ट होने से रोकते हैं।

नाक के भीतरी भाग में सर्वत्र एक श्लैष्मिक–झिल्ली चढ़ी रहती है। इसके पीछे तन्त्रिका जाल होता हे, जहाँ से 'तन्त्रिका सूत्र' (Nerve Fibres) निकलते हैं। वे एक चलनी जैसे छिद्र के द्वारा मस्तिष्क के धरातल पर पहुँच कर घ्राण खण्ड (Olfactory Lobe) में जा मिलते हैं।

जब हम किसी वस्तु को नासा–छिद्रों के समीप ले जाते हैं, जब उसकी गंध श्लैष्मिक झिल्लियों में होकर 'तन्त्रिका–कली (Nerve Buds) के सम्पर्क में पहुँचती है। वहाँ से वह 'तन्त्रिका सूत्र' के द्वारा 'घ्राण केन्द्र' में पहुँच कर, घ्राण पथ (Olfactory Tract) से होती हुई 'घ्राण कर्णक' (Olfactory Gyrus) पर पहुँचती है, जहाँ से कि गंध का अनुभव होता है।

नासागुहा के प्रत्येक कोष्ठ (Chambes) के ऊपरी भाग से सूँघने तथा नीचे वाले भाग से श्वास ग्रहण करने की क्रिया सम्पन्न होती है। वायु का अधिकांश भाग इसी निम्न भाग में होकर जाता है। नाक का पिछला भाग कण्ठ से संबंधित रहता है। इसी कारण कभी पानी पीते समय हँसी आ जाने पर पानी कण्ठ से हटकर नाक में आ जाता है।

नाक के द्वारा जहाँ गन्ध–ज्ञान होती है, वही श्वास–प्रश्वास क्रिया भी सम्पन्न होती है।

# जिह्वा (TONGUE)

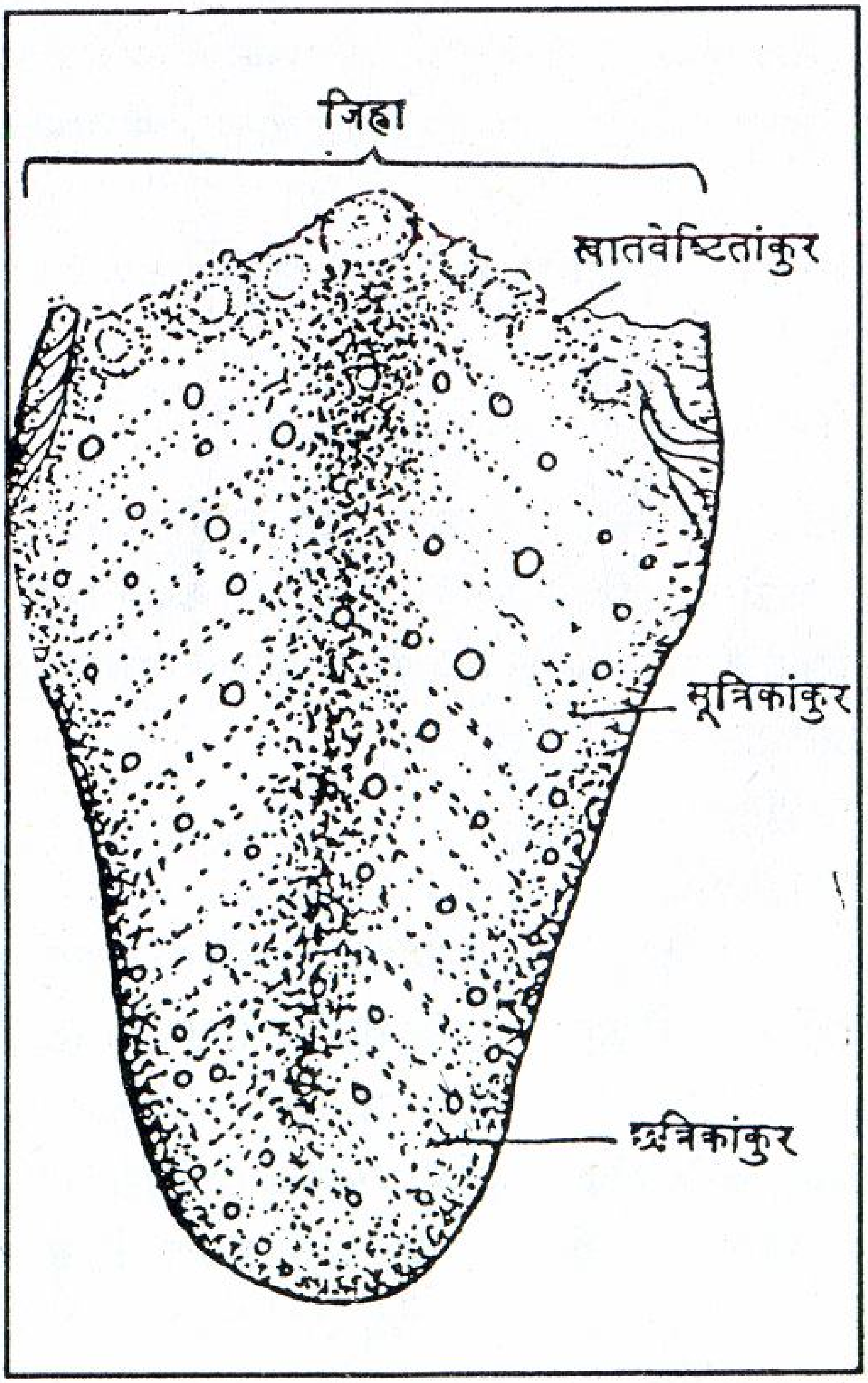


(जीभ की बनावट)

यह स्वाद विषयक ज्ञानेन्द्रिय है, जो मुँह के भीतर रहती है। यह मांस तथा मांसपेशियों से निर्मित है तथा इसके ऊपर श्लैष्मिक कला चढ़ी रहती है। इसके निचले भाग की श्लैष्मिक कला चिकनी तथा ऊपरी भाग की खुरदुरी होती है। यह मांसपेशियों द्वारा हन्वास्थि था कण्ठिकास्थि से मिली होती है। इसके मांस में संकोच की शक्ति होती है। अतः इसे इच्छानुससार छोटा–बड़ा तथा लम्बा–चौडत्री किया जा सकता है।

जीभ का अग्रभाग पतला तथा मूल भाग चौड़ा और मोटा होता है इसके सिरे, जड़ तथा किनारों पर 'स्वादकोष' (Taste Buds) होते हैं, जिनसे विभिन्न प्रकार के स्वादों का अनुभव होता है।

खाने–पीने की कोई भी वस्तु जब मुँह में डाली जाती तो वह श्लैष्कि–झिल्ली के सम्पर्क में आती है तथा उसका स्वाद जिह्ना तन्त्रिका कलिकाओं (Lingual Nerve Bunds) से जिह्ना–तन्त्रिका में (Lingual Nerve) में पहुंचता है। वहां से तन्किाऐं उसे मस्तिष्क में ले जाती हैं।

जीभ की नोंक पर पाई जाने वाली स्वाद कलियों से मिठास का अनुभव होता है। जिह्ना के दोनों किनारों से खट्टेपर का तथा मध्य भाग से नमकीन स्वाद का अनुभव होता है तथा जिह्ना के पिछले भाग से कड़वे स्वाद का अनुभव होता है।

मुँह में डाली हुई वस्तु चर्बण क्रिया तथा लार की सहायता से गल जाती है, तभी स्वाद का अनुभव होता ह। यदि जीभ अधिक तिक्त वस्तुओं के सम्पर्क में आती है, तो उससे पानी गिरने लगता है, ताकि वह तीखापन हल्का हो जाये और उसकी तीक्ष्णता से जीभ के कोमल टिश्यूज को कोई हानि न पहुँचे।

यह (जीभ) स्वाद की अनुभूति के अतिरिक्त भोजन को पचाने तथा बोलने में भी सहायक होती है।

## त्वचा (Skin)

यह स्पर्श विषयक ज्ञानेन्द्रिय है। यह सम्पूर्ण शरीर को ढँके रखती है। इसके द्वारा ही हमें गर्मी, सर्दी, कोमलता, कठोरता आदि का अनुभव होता है। जब हम

किसी वस्तु का स्पर्श करते हैं अथवा कोई वस्तु हमारी त्वचा के सम्पर्क में आती हें तब हमें उसके स्पर्श का अनुभव होता है।

त्वचा के दो भाग होते हैं –

(1) बाह्य त्वचा (Epidermis)

(2) अन्तः त्वचा (Dermis)

बाहय–त्वचा–इसकी मोटाई शरीर के विभिन्न अवयवों पर अलग–अलग पाई जाती है। उदाहरण के लिए तलवों पर इसकी मोटाई $^1/_{20}$ इंच तथा चेहरे पर $^1/_{200}$ इंच होती है। बाहरी त्वचा इपीथीलियल–कोषाओं की अनेक तहों के मिलने से बनती है। ये कोषाऐं भीतरी सैलों की रक्षा करते हैं तथा स्वयं निरंतर घिसते रहते हैं। घिसे हुए कोषाओं (Cells) के स्थान पर नये कोषा आते रहते हैं। ऊपरी त्वचा की निचली तह में जिस रंग के कोषा होता है, हमारा शरीर भी उन्हीं के आधार पर गोरा, काला सांवला अथवा गेहुआ दिखाई देता है। इन भीतरी सैलों को रंजक–कोषा' (Pigment Cells) कहा जाता है।

बाह्य–त्वचा में रक्त नलिकाऐं नहीं होती। इनके भीतरी सैल उस लसीका से पोषण प्राप्त करते हैं, जो अन्तः त्वचा से सैलों से धीरे–धीरे निकलते हैं। बाह्य त्वचा में स्त्रायु–सूत्र भी अत्यधिक कम परिणाम में पाये जाते हैं।

**अन्तः त्वचा**–यह बाह्य त्वचा के नीचे रहती है तथा संयोजक ऊतक–तन्तुओं (Connective Tissues) से बनी होती है। ये तन्तु ऊपरी भाग में दृढ़ता से संलग्न रहते हैं तथा निम्न भाग में कुछ ढीले होते हैं। इन तन्तुओं के निम्न भाग में थोड़ी सी चर्बी भी रहती है। त्वचा के निर्माण के संबंध में इस पुस्तक के पहले प्रकरण में विस्तार पूर्वक लिखा जा चुका है। अन्तः त्वचा के नीचे दूसरे ऊतक होते हैं, जिनमें चर्बी की मात्रा अधिक पाई जाती है।

त्वचा में दो प्रकार की ग्रंथियाँ होती है–(1) तैल जैसी चिकनाई निकालने वाली ग्रंथियाँ (Sebaceous or Oil Glands) तथा (2) पसीना निकालने वाली ग्रंथियाँ (SweetGlands) ।

चिकनाई निकालने वाली ग्रंथियाँ वालों (रोगों) की जड़ों से संबंधित होती है तथा पसीना निकालने वाली ग्रंथियां शरीर के मल को पसीने के रूप में बाहर निकालती रहती हैं।

बाह्य त्वचा की पर्त पर असंख्य छोटे–छोटे छिद्र पाये जाते हैं। इन्हीं के द्वारा पसीना बाहर निकलता है तथा इन्हीं छिद्रों में होकर रोंए भी निकलते हैं। इन छिद्रों को 'रोमकूप' (Pores of the Skin) भी कहा जाता है।

पसीना निकालने वाली ग्रंथियों का निम्न भाग अन्तः त्वचा के निम्न भाग में सर्प की भाँति गेंडुली बाँधे रहता है। ये ग्रंथियाँ वृक्क के कार्य में भी सहायता करती हैं।

त्वचा श्वास–संस्थान के एक अवयव के रूप में भी कार्य करती है। यह अपने छिद्रों द्वारा वायुमण्डल से आक्सीजन ग्रहण करती हैं तथा कार्बन डाई आक्साइड को निकालती रहती हैं।

मांसपेशियों के ऊपर तथा अन्तः चर्म के ऊपर एवं बाह्य चर्म के नीचे भेद अर्थात् चर्बी (Fat) रहती है। यह शरीर को गर्म रखती है।

त्वचा पर जो महीन सूत जैसे केश दिखाई देते हैं, उन्हें 'रोम' (Hair) कहा जाता है। दाढ़ी मूँछ तथा सिर के केशों को 'बाल' या केश कहते हैं। इनकी जड़ें, अधः त्वचा में घुसी रहती हैं, जिन्हें लोमकूप (Hair Follicle) कहा जाता है।

नख–अंगुलियों पर पाये जाने वाले नाखून भी बाह्य त्वचा के ही रूपान्तर हैं। ये अंगों की रक्षा तथा स्पर्श शक्ति में सहायता करते हैं। इनके ऊपरी भाग को देह (Body) तथा त्वचा के निचले भाग को जड़ (Root) कहा जाता है।

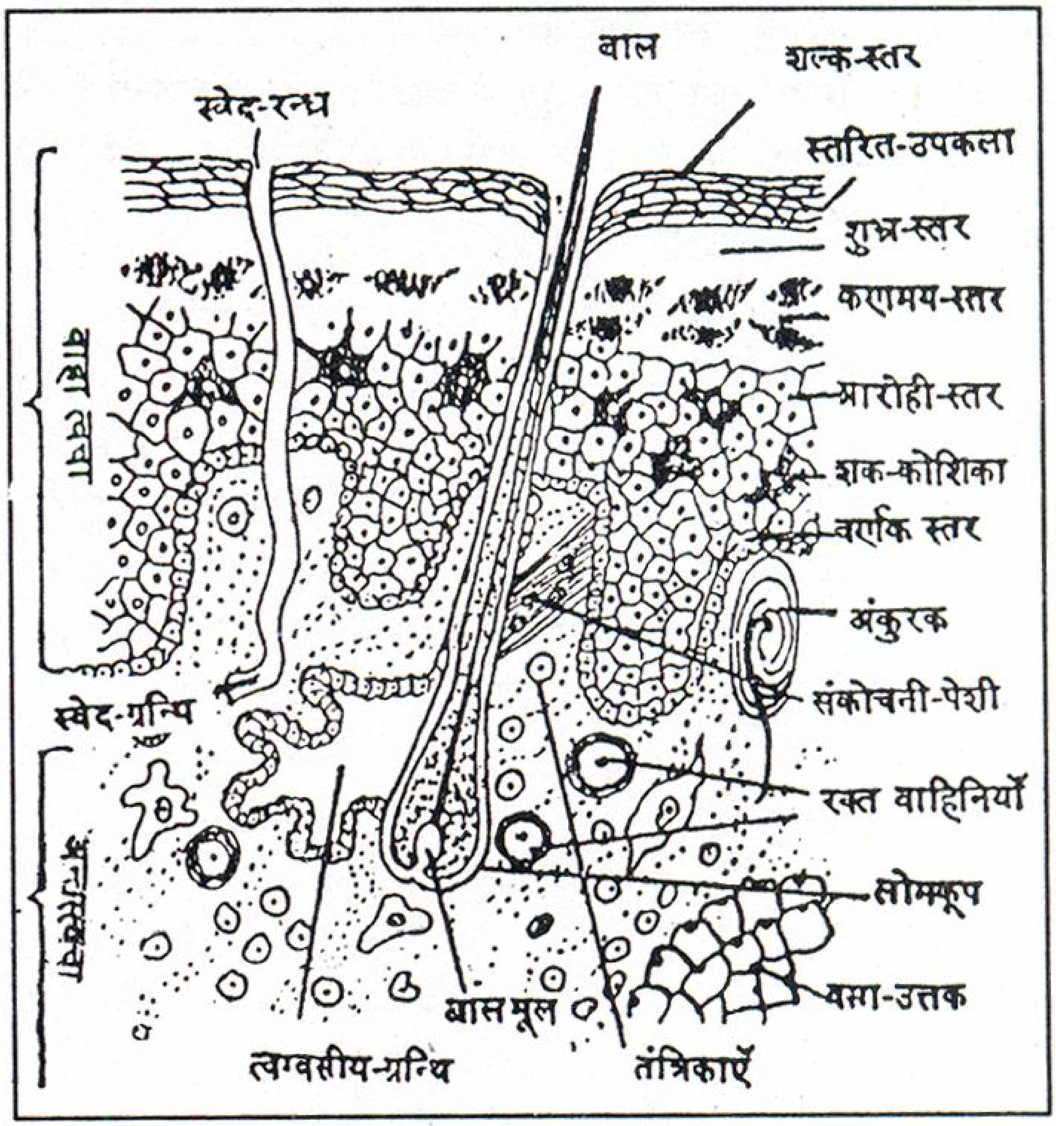

बाल
शल्क-स्तर
स्वेद-रन्ध्र
स्तरित-उपकला
शुभ्र-स्तर
कणमय-स्तर
प्रारोही-स्तर
शक-कोशिका
वर्णक स्तर
अंकुरक
संकोचनी-पेशी
स्वेद-ग्रन्थि
रक्त वाहिनियाँ
लोमकूप
वसा-उत्तक
बाल मूल
त्वग्वसीय-ग्रन्थि
तंत्रिकाएँ
बाह्य त्वचा
अन्तस्त्वचा


(त्वचीय-तन्त्र)

# संदर्भ सूची


1. डॉ. राजेश दीक्षित ''शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान'' हिन्दी सेवा सदन मथुरा, (उ.प्र.)।
2. Dr. B.B. Arora & Ashok Sabharwal Modern ABC of Biology Publishers by modern.
3. डॉ. कालीदास जोशी ''व्यवहारिक योग'' म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल (म.प्र.)।
4. ''साधारण रोगों की योगिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा'' केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद् (नई दिल्ली)।
5. डॉ. एच.एस. गौर विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त नोट्स।